वीर-सतसई

वियोगी हरि

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ………… आगत संख्या…………

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा। पुस्तक लेने के पहले पाठ्य पुस्तक की भली-भांति जांच कर लें। इश्यू होने के पश्चात फटी पुस्तक, विलुप्त पृष्ठो की कोई जिम्मेदारी पुस्तकालय की नहीं होगी।

हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमाला—३२वाँ ग्रंथ

वीर-सतसई

रचयिता

वियोगी हरि

प्रकाशक

साहित्य-भवन-लिमिटेड,
प्रयाग

द्वितीय संस्करण
१०००

विजया-दशमी
संवत् १९८९

मूल्य १।।)

उत्तेजन

जाव भलैं कुरुराज पै,
धारि दूत-वर वेश।
जइयौ भूलि न कहुँ वहाँ,
केशव ! द्रौपदि-केश ॥

विषय-सूची

पहला शतक

[पृष्ठ १ से १५ तक]

दूसरा शतक

[पृष्ठ १७ से ३१ तक]

तीसरा शतक

[पृष्ठ ३३ से ४९ तक]

चौथा शतक

[पृष्ठ ५१ से ६८ तक]

पाँचवाँ शतक

[पृष्ठ ६९ से ८४ तक]

छठा शतक

[पृष्ठ ८५ के ९८ तक]

सातवाँ शतक

[पृष्ठ ९९ से १११ तक]

श्रीहरिः

वीर-सतसई

पहला शतक

मंगलाचरण

जयतु कंस-करि-केहरी ! मधु-रिपु ! केशी-काल ।
कालिय-मद-मर्द्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥
गिरिवरु जापै धारिकैँ राखी ब्रज-जन-लाज ।
ताही छिँगुनी कौ हमैं बल-बानो, यदुराज ! ॥ २ ॥
काटौ कठिन कलेसु मो मोह-मार-मद वक्र ।
मथन-मत्त-शिशुपाल-करि केहरि केशव-चक्र ॥ ३ ॥
रह्यौ उरझि रथ-चक्र जो धावत भीषम-ओर ।
कब गहिहौँ रणछोर के वा पटुका कौ छोर ॥ ४ ॥

वीररस-प्राधान्य

आदि, मध्य, अवसानहूँ जामेँ उदित उछाह ।
सुरस बीर इकरस सदा, सुभग सर्बरस-नाह ॥ ५ ॥
परिणामहुँ जो देतु है लोकोत्तर आनन्द ।
सुरस बीर रस-राजु सो, सहित-उछाह अमन्द ॥ ६ ॥
बीर-स्थायीभावसोँ सरस सर्बरस आहिँ ।
नीकेहूँ फीके सबै बिनु जाके जग-माहिँ ॥ ७ ॥

वीररसानन्यता

छाँड़ि बीररसु अब हमैँ नहिँ भावतु रस आन ।
सूझतु सावन-आँधरहिँ हरो-हरो हि जहान ॥ ८ ॥
री रसना ! बस ना कछू, अब तोपै रस-तीर ।
चाखति सरस सिँगारु तजि क्यों नीरस रस बीर ? ॥ ९ ॥
कहा करौँ माधुर्य लै मृदुल मंजु बिनु ओज ।
दिपैँ न ज्योति-बिकास-बिनु सुंदर नैन-सरोज ॥ १० ॥

शूरबीर

खंड-खंड ह्वै जाय बरु, देतु न पाछेँ पैँड़ ।
लरत सूरमा खेत की मरत न छाँड़तु मेँड़ ॥ ११ ॥

सहजसूर रण-चूर-उर चाहिय चातक-चाह* ।
चाहिय हारिल-हठ† वहै, चाहिय सती-उमाह ॥ १२ ॥
खल-खंडन, मंडन-सुजन, सरल, सुहृद, सविवेक।
गुण-गँभीर, रण-सूरमा मिलतु लाख महँ एक ॥ १३ ॥
खल-घालक, पालक-सुजन, सुहृद, सदय, गंभीर।
कहूँ एक सत लाख में 'प्रकृत सूर' रण-धीर ॥ १४ ॥
मुहँ माँगे रण-सूरमा देतु दान परहेतु ।
सीस-दानहूँ देतु पै पीठि-दान नहिँ देतु ॥ १५ ॥
कहत महादानी उन्हैँ चाटुकार मतिकूर ।
पीठिहुँ कौ नहिँ देत जे कृपण दान रण-सूर ॥ १६ ॥
कहतु कौन रणमें तुम्हैँ, धीर-बीर-सरदार ।
लखि रिपु बिनु हथयार जो देत डारि हथयार ॥ १७ ॥
आजु कहूँ तौ काल्हि कहुँ, नाहिँ एक विश्राम ।
करतु सिंह-सम सूरमा ठौर-ठौर निज ठाम ॥ १८ ॥

---

*रटत-रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग ।
'तुलसी' चातक-प्रेम कौ नितनूतन रुचि रंग ॥
'तुलसी' चातक देत सिख, सुतहि बार ही बार ।
तात, न तर्पन कीजिये बिना बारि-धर-धार ॥

—तुलसीदास

†गही टेक छूटै नहीं, कोटिन करौ उपाय ।
हारिल धर पग ना धरै, उड़त फिरत मरि जाय ॥

—अज्ञात कवि

तंत न तोरत अंतलौं, बचन निबाहत सूर ।
कहा प्रतिज्ञा पालिहैं कपटी कादर कूर ॥ १९ ॥
बचन-सूर केते यहाँ, करतब-कोरे कूर ।
साँचो तो कहुँ लाख में लख्यौ एक रण-सूर ॥ २० ॥

दया-वीर

किधौं त्याग-गिरि-शृङ्ग, कै भाव-जान्हवी-कूल ।
किधौं करुण-रस-सिंधु यह दया-बीर मुद-मूल ॥ २१ ॥
दया-धर्म जान्यौ तुहीँ, सब धर्मनु कौ सार ।
नृप शिबि ! तेरे दान पै बलि हूँ बलि सौ बार ॥ २२ ॥
तूँहीँ या नर-देह कौ, बलि, पारखी अनूप ।
दया-खड्ग-मरमी तुहीँ, दया-सूर शिबि भूप ! ॥ २३ ॥
दल्यौ अहिंसा-अस्त्र लै दनुज-दुःख करि युद्ध ।
अजय-मोह-गज-केसरी, जयतु तथागत बुद्ध ॥ २४ ॥
रण-थल मूर्छित स्वामि के लीनें प्राण बचाय ।
गीधनु निज तनु-माँसु दै, धन्य संयमाराय* ॥ २५ ॥

---

*संयमराय महाराज पृथ्वीराज का एक शूर सामंत था । एकबार युद्ध-स्थल पर महाराज पृथ्वीराज घोड़े पर से मूर्च्छित हो गिर पड़े । पासही संयमराय भी आहत पड़ा था । यह समझकर, कि महाराज मर गये हैं, गीध उन पर मँड़राने लगे । दो-एकने तो चोंच भी चला दी । संयमराय से यह न देखा गया । उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका । उधर जरा ही देर करता है, तो गीध महाराज को खाये जाते हैं । सामन्तने अपने शरीर से माँस काट-काटकर फेकना शुरू कर दिया । गीधों

फैंकि-फैंकि निज माँसु लिय संभरि-राय* बचाय ।
है तूँ शिबि तें घटि कहा, सुभट संजमाराय ! ॥ २६ ॥

सत्य-वीर

सुंदर सत्य-सरोज सुचि बिगस्यौ धर्म-तड़ाग ।
सुरभित चहुँ हरिचंद कौ जुग-जुग पुन्य-पराग ॥ २७ ॥
मृतरोहित †-पट-दानु लै धार्‌यौ धर्म अमन्द ।
खड्ग-धार-ब्रत-धीर, धनि, सत्य-बीर हरिचन्द ॥ २८ ॥
फूँकन देतु न मृत सुवनु, माँगतु तिय-तनु-चीर ।
निरखि नृपति-सत-धर्म-धृति, धृतिहूँ भई अधीर ॥ २९ ॥
पद्मा-पति-पटपीत क्यों खस्यौ नीर-निधि-तीर ? ।
पतिहिं फारि शैव्या दियौ निज-अँग-आधो चीर ॥ ३० ॥
बैंचि प्रियै, प्रियपूतहूँ भयौ डोम-गृह-दास ।
सत्यसंध हरिचंद ! तूँ सहज सुसत्य-प्रकास‡ ॥ ३१ ॥

को और क्या चाहिए । आनन्द से माँस खाने लगे । थोड़ी देर बाद महाराज होश में आये । आँख खोलते ही स्वामि-भक्त संयमराय की यह लीला देखी । पर, वहाँ तो सामन्त मरण-प्राय हो गया था महाराज उसकी स्वामि-भक्ति देखकर गद्‌गद् हो गये । किसी तरह उठकर गीधों को भगाने गये, पर सामन्त तो तब स्वर्ग को सिधार चुका था ।

*महाराज पृथ्वीराज ।

† रोहिताश्व ।

‡ बैंचि देह दारा सुवन, होय दासहू मन्द ।
रखिहै निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ॥—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

जौ न जन्म हरिचन्द कौ होतो या जग माहँ ।
जुग-जुग रहति असत्य की अमिट अँधेरी छाहँ ॥ ३२ ॥

इत गाँधी*, उत सत्य दोउ मिले परस्पर चाहि ।
यह छाँड़तु नहिँ ताहि, त्यौं वह छाँड़त नहिँ याहि ॥ ३३ ॥

धनि, तेरी तप-धीरता, धनि, गुण-गण-गंभीर !
या कलि में गाँधी ! तुहीँ इक सत्याग्रह-बीर ॥ ३४ ॥

नहिँ बिचल्यौ सतपंथ तें सहि असह्य दुख-द्वंद ।
कलि में गाँधी-रूप ह्वै पुनि प्रगट्यौ हरिचंद ॥ ३५ ॥

धर्म-बीर

धन्य ओरछो, जहँ भयौ धर्म-बीर हरदौल† ।
दिये प्राण सत-धर्म पै पालि बीर-ब्रत नौल ॥ ३६ ॥

---

* "वर्तमान काल में एकमात्र गाँधी ही ईश्वर के सामने सत्य के प्रतिनिधि हैं।"

—काउण्ट ल्यू टॉल्सटाय।

"गाँधीजी के सामने जाने पर मनुष्य यही समझता है, कि मैं किसी महान् नैतिक देवता के सामने खड़ा हूँ, जिसकी आत्मा एक शान्त और स्वच्छ झील के समान है, जिस में सत्य का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।"

—एच० एस० एल० पोलक।

"निस्संदेह गाँधीजी उन्हीं तत्वों से बने हैं, जिन तत्वों से बड़े-बड़े बहादुर और शहीद बनते हैं। बल्कि इससे भी बढ़कर एक और गुण उनमें यह है, कि वे अपने विलक्षण आत्मिक अथवा सत्य-बल से अपने आस-पास के साधारण मनुष्यों को भी बहादुर और शहीद बना देते हैं।"

—गोपाल कृष्ण गोखले।

†बुन्देलखंड में ओड़छा एक प्राचीन राज्य है। परमप्रतापी बुन्देलों का सबसे बड़ा और प्रतिष्ठित राज्य यही है। महाराज मधुकर शाह के पुत्र ओड़छाधीश जुझारसिंहजी प्रायः दिल्ली में रहा करते

धर्मबीर हरदौलजू ! अजहुँ तुम्हारे गीत।
ह्याँ घर-घर तिय गावतीं समुझि सनातन रीत ॥ ३७॥
हँसत-हँसत निज धर्म पै दियौ जु सीसु चढ़ाय।
धर्म-समर में मरि भयौ अमर हकीकतराय ॥ ३८ ॥
दयानंद ! आरज-पथिक* ! यति-वर श्रद्धानंद† !
जगिहै तुह्मरे रुधिर तें जुग-जुग-धर्म अमंद ॥ ३९ ॥

थे। राज्य-प्रबन्ध का भार, महाराज की अनुपस्थिति में, उनके भाई कुमार हरदौल के सिर पर रहता था। राज्य के अधिकारी न्यायशील कुमार पर जला करते और उनके हाथ से राज्य-प्रबन्ध छीनने की ताक में रहते थे। राजकुमार पर राजमहिषी का पुत्रवत् वात्सल्य स्नेह था। कुमार भी उन्हें मातृवत् मानते थे। देवर-भौजाई का यह पवित्र सम्बन्ध दुष्ट ईर्षालु कर्मचारियों से न देखा गया। षड़्यन्त्र रचकर उन्होंने महाराज को लिखा, कि कुमार और महारानी के बीच अश्लील सम्बन्ध है। राजा के शरीर में मानों आग लग गई। अपनी पत्नी के सतीत्व पर उन्हें सन्देह हो गया। एक दिन रानी से, महल में जाकर, बोले कि यदि तुम दोनो में विशुद्ध प्रेम है, तो अपने हाथ से हरदौल को विष दे दो। राजमहिषीने प्राणान्त पीड़ा का अनुभव करते हुए भी धर्मरक्षणार्थ पति-देवता की बात मान ली। कुमार को निमन्त्रण दिया गया। भौजाई अपने पुत्रवत् देवर को डबडबाती आँखों से निहारती हुई परोसने लगी। पहले तो छिपाया, पर कुमार के बहुत आग्रह करने पर रानी को सारा रहस्य खोलना ही पड़ा। हरदौलने हँसकर कहा कि, माता! आप क्यों दुःख करती हैं ? यदि मेरी हत्या से पितृ-तुल्य पूज्य भ्राता का सन्देह दूर होता है, आपके सतीत्व की परीक्षा और मेरे धर्म की रक्षा होती है तो मेरा मरण धन्य है ! यह कहकर रानी के हाथ से विष-मिश्रित दूध छीनकर धर्म-वीर हरदौल हँसते-हँसते पी गये, और श्रीरामचन्द्रजी के मन्दिर के सामने एक चौकी पर बैठकर ध्यान करते हुए उन्होंने स्वर्गारोहण किया। कहते हैं, उनकी थाली का ज़हर मिलाहुआ भोजन पाकर उनके कई नौकर, घोड़े और हाथी भी उन्हीं के साथ स्वर्गस्थ हुए। हरदौल इस धर्म-बलि के पश्चात् बहुत प्रसिद्ध हुए। समस्त बुन्देलखंड में उनके नाम के चौतरे अद्यापि बने हुए हैं। आज भी प्रत्येक मांगलिक अवसर पर विघ्न-निवारणार्थ पहले 'हरदौल लाला' के ही गीत गाये जाते हैं।

*आर्य मुसाफ़िर पंडित लेखराम, जिन्हें एक कठोर-हृदय मुसलमानने छुरी घुसेड़कर मार डाला था।

† धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द, जिन्हें हाल ही में दिल्ली के एक धर्मोन्मत्त अब्दुर्रसीद नामक

बिरह-वीर*

तजि सरबसु रस-बसु कियौ जिन्ह जग-गुरु गोपाल।
भाव-भौन-धुज धन्य वै बिरह-बीर ब्रज-बाल ॥ ४० ॥

साध्यौ सहज सुप्रेम-ब्रत चढ़ि खाँड़े की धार।
बिरह-बीर ब्रज-बाल हीँ रसिक-मेंड़-रखवार ॥ ४१ ॥

धन्य, बीर ब्रज-गोपिका तजी न रसकी मेंड़।
हेत-खेत तें अंतलौँ दियौ न पाछेँ पेंड़ ॥ ४२ ॥

दान-वीर

किधौँ उच्च हिम-शृङ्ग-वर, किधौँ जलधि गंभीर।
किधौँ अटल ध्रुव-धाम, कै दान-बीर मति-धीर ॥ ४३ ॥

सुरतरु लै कीजै कहा, अरु चिन्तामणि-ढेरु।
इक दधीचि की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेरु ॥ ४४ ॥

व्यक्ति ने पिस्तौल चला कर मारा है।

*सम्मान्य साहित्यिकोंने इस नाम का वीर-विभागों में कोई विभाग नहीं किया है। पर वीररस का स्थायी भाव 'उत्साह' विशुद्ध विरह में, अच्छी मात्रा में, पाया जाता है। इसी से हमने अद्वितीय विरहिणी व्रजांगनाओं को 'विरह-वीर' नाम के नये वीर-विभाग में स्थान देने की धृष्टता की है।

† गोपिन की सरि कोऊ नाहीं
जिन तृन सम कुल-लाज-निगड़ सब तोर्‌यौ हरि-रस-माहीं ॥
जिन निजबस कीने नँदनंदन विहरीं दै गलबाहीं।
सब संतन के सीस रहौ उन चरन-छत्र की छाहीं ॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

चिंतामनि सौ लख कहा, कोटिन कनक-पहाड़।
त्रिभुवन माँहि सराहियै ऋषि दधीचि कौ हाड़॥ ४५॥

शूर और कादर

सदय, विवेकी, सत्यव्रत, सुहृद लेखियतु शूर।
अविवेकी, क्रोधी, कुटिल, कादर कहियतु क्रूर॥ ४६॥
कूकरु उदरु खलायकैं, घर-घर चाटतु चून।
रँगे रहत सद खून सों नित नाहर-नाखून॥ ४७॥
शूर-चाह-अनचाहहूँ देखिय अगम अथाह।
कहा क्रूर-कादरनु की चाह और अनचाह॥ ४८॥
करि कादर सों मित्रता कहा सारिहौ, मीत!
शत्रुताहुँ रण-शूर-प्रति मंगल-मूर्ति पुनीत॥ ४९॥
कहतु कौन कायर तुम्हैं, बल-सायर! रण माहिँ।
भभरि भाजिबो पीठि दै सब के बस कौ नाहिँ॥ ५०॥
मति मन-मानिक सौंपियौ, कुटिल-कादरनु हाथ।
हैं वै ही सत-जौहरी, नहिँ जिन धर पै माथ॥ ५१॥
कादर बीरनु संग मिलि, भलैं अलापहिँ राग।
छिपत न अंत बसंत में, कैसेहुँ कोयल-काग॥ ५२॥

बृथा उभय-निरधार में बिनत-उधेरत बेद ।
खुलि जैहै वा दिन सबै, नकल-असल कौ भेद ॥ ५३ ॥

युद्ध-वीर

केसरिया बागो पहिरि, कर कंकण, उर माल ।
रण-दूलह! बरि लाइयौ दुलहिन-बिजय-सुबाल ॥ ५४ ॥
औघट घाट कृपाण कौ, समर-धार बिनु पार ।
सनमुख जे उतरे, तरे, परे बिमुख मँझधार* ॥ ५५ ॥
पैरि पार असि-धार कै, नाखि युद्ध-नद-भीर ।
भेदि भानु-मंडलहिँ अब, चल्यौ कहाँ रण-धीर? ॥ ५६ ॥
दीठि-बिमुख ह्वै ढीठ वै गिनत न ईठ-अनीठ ।
घालत दै-दै पीठ सर, तानि-तानि सर-पीठ ॥ ५७ ॥
धनि धनि, सो सुकृती ब्रती, सूर-सूर, सतसंध ।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै खेलतु जासु कबंध ॥ ५८ ॥
प्रतिपालक निज पैज के, खल-घालक रिपु-जैत ।
बल-बाँके बानैतहीँ होत बिसद बिरुदैत ॥ ५९ ॥
लरतु काल सों लाख में कोइ माइ कौ लाल ।
कहु, केते करबाल कों करत कंठ-कलमाल ॥ ६० ॥

---

* तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग ।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अङ्ग ॥

—बिहारी

कहाँ सूर समरत्थ, जो समर-दानु बढ़ि लेतु ।
कौन काल-करबालकों किलकि कलेऊ देतु ॥ ६१ ॥
धन्य, भीम ! रण-धीर तूँ, धरि अरि-छाती पाव ।
भरि अँजुरिनि शोणितु पियौ, इन मूँछनि दै ताव ॥ ६२ ॥
धन्य, कर्ण ! रिपु-रक्त सों दियौ पूरि रण-कुण्ड ।
करि कंदुक अति चाव सों, उछरि उछारे मुण्ड ॥ ६३ ॥
सहज बजावनु गाल त्यौं, सहज फुलावनु गाल ।
काल-गाल में रिपु-दलै कठिन गेरिबो हाल ॥ ६४ ॥
प्रान हथेरी पर धरें, कियें ओज-मद-पान ।
तबर-तीर-तरबार लै चले जूझिबे ज्वान ॥ ६५ ॥
रणसुभट्ट वै भुट्ट-लौं गहि असि कट्टत मुण्ड ।
उठि कबंध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु-रुण्ड ॥ ६६ ॥

प्रकृत बीर

प्रकृत बीर कौ अंतहूँ परतु मंद नहिँ तेज ।
नहिँ चाहतु चंदन-चिता, भीष्म छाँड़ि शर-सेज ॥ ६७ ॥
औसरु आवत प्रान पै खेलि जाय गहि टेक ।
लाखनु बीच सराहियै प्रकृत बीर सो एक ॥ ६८ ॥
सुमृदु सिरीष-प्रसूनतें कठिन बज्रतें होय ।
प्रकृत बीर-वर-हीयकौ चित्र न खींच्यौ कोय ॥ ६९ ॥

शूर-सुपूत

सीस हथेरी पर धरें, ठोंकत भुज मजबूत।
छिति, छत्रानी-गर्भ तें, जनमतु सूर सुपूत ॥ ७० ॥
कादर भये न सूर-सुत, करि देख्यौ निरधार।
नहिँ सिंहिनि के गर्भतें, उपजे कबहुँ सियार ॥ ७१ ॥
सूर-सुतहिँ जग जन्म-हीं, सहज 'जंग-जागीर'।
'समर-मरण-मंसब' मिल्यौ, अरु खिताब 'रण-धीर' ॥ ७२ ॥

क्षत्रिय-निरुपण

'क्षत्रिय-क्षत्रिय' कहे तें, क्षत्रिय होय न कोय।
सीसु चढ़ावै खड्ग पै, क्षत्रिय सोई होय ॥ ७३ ॥
लावै बाजी प्रान की, चढ़ि कृपान की धार।
सोई क्षत्रिय-धर्म की मेंड़ रखावनहार ॥ ७४ ॥
जोरि नाम सँग 'सिंह' पदु, कियौ सिंह बदनाम।
ह्वैहैं क्योंकरि सिंह यौं, करि शृगाल के काम ॥ ७५ ॥

मंगल प्रयाण

पारथ-सारथि कौ हियें रहौ खचित वह ध्यान।
हँसत-हँसत बस बीर-लौं करियौ, प्रान ! प्रयान ॥ ७६ ॥
वह दिनु, वह छिनु, वह घरी, पुनि पुनि आवति नाहिं।
हिलुरि-हिलुरि जब हंस ए समर माहिं अवगाहिँ ॥ ७७ ॥

दुवन-दर्प दरि, बिदरि अरि, राखि टेक-अभिमान।
निकसत हँसि घमसान में बड़भागिनु के प्रान ॥ ७८ ॥
लोहित-लथपथ देखिकैं, खंड-खंड तन-त्रान।
निकसत हुलसत युद्ध में बड़भागिनु के प्रान ॥ ७९ ॥
कादर जीवित हीं मरत दिन में बार हजार।
प्रान-परवेरू बीर के उड़त एकहीँ बार ॥ ८० ॥
श्वान-मीच मरिहैं कहूँ, धिक, रण-कादर नीच !
पुण्य-प्रतापनु पाइयतु शुद्ध युद्ध-थल-मीच ॥ ८१ ॥

पवित्र तीर्थ

अरे, फिरत कत, बावरे ! भटकत तीरथ भूरि।
अजौं न धारत सीस पै सहज सूर-पग-धूरि ॥ ८२ ॥
बसत सदा ता भूमि पै तीरथ लाख-करोर।
लरत-मरत जहँ बाँकुरे बिरुझि बीर बर जोर ॥ ८३ ॥
जगी जोति जहँ जूझ की, खगी खड्ग खुलि झूमि।
रँगी रुधिर सों धूरि, सो धन्य धन्य रण-भूमि ॥ ८४ ॥
तहँ पुष्कर, तहँ सुरसरी, तहँ तीरथ, तप, याग।
उठ्यौ सुबीर-कबंध जहँ, तहँई पुण्य-प्रयाग ॥ ८५ ॥
संगर-सौंहैं सूर जहँ, भये भिरत चकचूरि।
बड़भागनु तें मिलति वा रण-आँगन की धूरि ॥ ८६ ॥

कै कृपान की धार, कै अनल-कुंड कौ ठाट।
एही बीर-बधून के, द्वै अन्हान के घाट ॥ ८७ ॥
अनल-कुंड, असि-धार, कै रकत-रँग्यौ रण-खेत।
त्रय तीरथ तारण-तरण क्षिति, क्षत्रिय-त्रिय-हेत ॥ ८८ ॥
रण-बेला सतपर्व-सी अभिमत-फल-दातार।
सहस-जान्हवी-धार-लौं सुभट-हेतु असि-धार ॥ ८९ ॥
सुभट-सीस-सोनित-सनी समर-भूमि ! धनि-धन्य !
नहिँ तो-सम तारण-तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य ॥ ९० ॥
नमो-नमो कुरु-खेत ! तुव महिमा अकथ अनूप।
कण-कण तेरो लेखियतु सहस-तीर्थ-प्रतिरूप ॥ ९१ ॥

शीर्ष-दान

जे जन लोभी सीस के, ते अधीन दिन-दीन।
सीसु चढ़ायेँ बिनु भयौ, कहौ कौन स्वाधीन ? ॥ ९२ ॥
एक ओर 'स्वाधीनता' 'सीसु' दूसरी ओर।
जो दो में भावै तुम्हैं, भरि सो लेहु अँकोर ॥ ९३ ॥
कोटिन जतन करौ चहै, रचि-पचि लाख बरीस।
मिली न कहुं स्वाधीनता, बिनु सौंपें निज सीस ॥ ९४ ॥
चाहौ जो स्वाधीनता, सुनौ मन्त्र मन लाय।
बलि-बेदी पै निज करनि, निज सिरु देहु चढ़ाय ॥ ९५ ॥

दियौ दानु जिन सीस कौ, ते न बहुत ब्रत-बीर ।
मुहुँ लगाय केते, कहौ, पियत सिंहिनी-छीर ? ॥ ९६ ॥
कोटिनु मधि कोऊ कहूँ कुल-दीपक इक होतु ।
नेह-सहित निज सीसु दै दस दिसि करतु उदोतु ॥ ९७ ॥
सौंप्यौ स्वामिहिं कोउ जन, कोउ धन, हय, गय, ठौरु ।
पै वह सहजैं सौंपि सिरु, भयौ सबनु सिरमौरु ॥ ९८ ॥
देत अजा-बलि देव कों अधम अधर्मी आज ।
धन्य धन्य, जिन सीसु निज, दियौ ईस-बलि-काज ॥ ९९ ॥
किम्मत हिम्मत की नहीं, नहिँ बलबीरज-तोल ।
आँक्यो गयौ न आजुलों, बीर-मौलि कौ मोल ॥ १०० ॥

दूसरा शतक

विजयराघव-ध्यान

मौलि-जटा, धनु-बान कर, मुख प्रसेदु, अँग श्रान्त ।
बसौ बिजयराघव हियेँ, कियेँ रूप रण-क्रान्त* ॥ १ ॥
कलित कंध धनु, तून कटि, कर सर, सरजू-तीर ।
सँग सखानु बानिक यहै, बसौ दृगनि रघुबीर† ॥ २ ॥

---

*सिर जटा-मुकुट प्रसून बिच-बिच अति मनोहर राजहीं ।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं ॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर-कन तन अति बने ।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने ॥

—तुलसी

†निम्नलिखित दोहे के साँचे में—

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल ।
या बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल ॥

यह ध्यान तो गोसाईं जी से ही अंकित करते बना है—

बिहरत अवध-बीथिन राम ।
संग अनुज अनेक सिसु, नवनील नीरद स्याम ॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पद-त्रान ।
पीतपट कटि तूनबर, कर ललित लघु धनु-बान ॥
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि ।
बसत तुलसीदास-उर अवधेस के सुत चारि ॥

—तुलसी

जटा-मुकुट सिर, चाप कर, कलित कलेवर स्याम।
दसमुख-करि-केंहरि रमौ दृगनि राम अभिराम ॥ ३ ॥
रहौ पूरि स्रवननि सदा, त्रिजग-प्रकंपनहार।
बंक-लंक-धर-शंक-कर युगल-चाप-टंकार ॥ ४ ॥

कवि-कर्त्तव्य

लै बल-बिक्रम-बीन, कवि ! किन छेड़त वह तान।
उठैं डोलि जेहिं सुनतहीं धरा, मेरु, ससि, भान ॥ ५ ॥
लै निज तंत्री छेड़िदै, कवि ! वह राग अभंग।
उठै धरा तैं ओज की नभ लगि तुंग तरंग* ॥ ६ ॥

---

*कवि ! तूँ क्यों न बीर रसु गावै ?
उथल-पुथल करि अखिल लोक में व्यापक गान सुनावै ?
जो या मद-बिभोर बानी बल-विक्रम-सर अन्हवावै।
तौ तूँ अनायासहीं कोटिन तीरथ कौ फलु पावै ॥
कब तें या कल कुसुम-कुञ्ज में रमि रमनी-छवि ध्यावै ?
कंकण-किंकिणि-झनक सुनत जहँ, तहँ प्रमत्त ह्वै धावै ॥
अजहूँ किन गम्भीर नादु कै शक्ति-मूर्ति प्रगटावै ?
किन नख-सिख-कुच-कटि-वर्णन की कारिख धोय मिटावै ?
शुचि पत्रावलि मलिन मसी सों काहे, निलज ! नसावै !
ओज-जान्हवी-जल तें ताकौ किन अँगरागु करावै ?
लोक-प्रकंपन शब्द-शक्ति सों जो पै जगतु जगावै।
कवि ! तबहीं तूँ या बसुधा पै, साँचो सुकवि कहावै ॥

[वीर-वाणी]

वीर कवि

हिन्दू-कवि, हिँदुवान-कवि, हिन्दी-कवि रसकन्द ।
सुकवि, महाकवि, सिद्धकवि, धन्यधन्य, कवि चन्द ॥ ७ ॥

भयौ उदित हिँदुवान-नभ चारुचन्द कविचन्द ।
रही बगरि चहुँ जोन्ह-सी रचना रुचिर अमन्द ॥ ८ ॥

रचि रासो* रस-रासि, अति उद्भट काव्य सुछन्द ।
पृथीराजचौहान-जसु अजर अमर किय चन्द ॥ ९ ॥

फिरदौसी† किन जाय दुरि देखतहीँ कविचन्द ।
जासु प्रभा लखि परि गयौ कवि होमर‡ हूँ मन्द ॥ १० ॥

अब नख-सिख-सिंगार के पढ़त कवित कमनीय ।
सरिस लाल भूषण कहाँ सुकवि आजु जातीय ॥ ११ ॥

सिवा-सुजस-सरसिज-सुरस-मधुकर मत्त अनन्य ।
रस-भूषण-भूषण, सुकवि-भूषण, भूषण धन्य ॥ १२ ॥

कविभूषण सों सरि, कहौ, करिहै को मति-अंध ।
जासु पालकी कहँ दियौ छत्रसालु निज कंध§ ॥ १३ ॥

---

*पृथ्वीराज-रासो ।

† फ़ारसी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'शाहनामा' का रचयिता ।

‡ जगद्विख्यात 'इलियड' महाकाव्य का प्रणेता ।

§ एक बार कविभूषण शिवाजी के पौत्र साहूजी के यहां भलीभाँति सम्मानित हो पन्ना-नरेश महाराज छत्रसाल के यहां आये । वहाँ भी कवि का यथेष्ट सत्कार किया गया । कवि की बिदाई करते समय महाराजने उनकी पालकी का डंडा खुद अपने कंधे पर रख लिया । भूषण यह देख गद्गद हो गये । पालकी से कूदकर कहने लगे, बस, महाराज !

रिपु गण सुनि भूषण-कवितु क्यों न होहिँ शर-विद्ध।
जाकी रसना पै सदा रहति चंडिका सिद्ध ॥ १४ ॥
किधौं इन्द्र कौ बज्र, कै प्रलय-कृसानु अमन्द ।
किधौं रुद्र-रण-चंड-चखु कविभूषण कौ छन्द ॥ १५ ॥
कविभूषण सिवराज की जिमि गूँथी गुन-माल ।
तिमि चंपत-सुत कौ चरितु किय चित्रित कविलाल* ॥ १६ ॥
हेलाहीं कटवाय रिपु, रण-बेला ह्वै ढाल ।
रह्यो बुन्देला-बीर† सँग अलबेला कविलाल ॥ १७ ॥
नितप्रति छत्र-प्रकास‡ तें सुकविलाल-कृत छन्द ।
पढ़ियौ चंपत§-बंसधर ! तुम्हैं खड़ग-सौगंद ॥ १८ ॥

राजत अखंड तेज, छाजत सुजसु, बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय-साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफ़ताप होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को ॥
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीनें,
भूषन भनत, ऐसो दीन-प्रतिपाल को ?
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू कों सराहौं, कै सराहौं छत्रसाल को ॥

(छत्रसाल-दशक)

*कविवर गोरेलाल। यह एक साथ ही महाराज का सामंत और कवि था।

†महाराज छत्रसाल।

‡ कविवर गोरेलाल का रचा हुआ एक सुन्दर वीररसात्मक काव्य। खेद है, कि यह काव्य अपूर्णही प्राप्त हुआ है। इसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने संशोधित कराके प्रकाशित किया है। हिन्दी-साहित्य में वीररस का ऐसा उत्तम ऐतिहासिक काव्य कदाचित् ही कोई और हो।

§महाराज छत्रसाल के पिता चंपतराय।

ब्रज-जाटनु* की रण-कथा गाय सुजान-चरित्र† ।
भूषण-लौं, सूदन ! तुहूँ रसना कीन पवित्र ॥ १९ ॥
कादरता-सूदन अहैं, कवि सूदन ! तुव छन्द ।
फरकत भट भुज-दंड, सुनि धरकत कादर मन्द ॥ २० ॥

केसरी

एकछत्र बन कौ अधिप पंचाननहीं एक ।
गज-सोनित सों आपुहीं कियौ राज-अभिषेक ॥२१ ॥
काँपत कोपित केहरी मुहुँ बायें बिकराल ।
रहे धँधकि अंगार कै प्रलयकाल के लाल ? ॥ २२ ॥
छिन्न-भिन्न ह्वै उड़ति क्यों मद-भौंरनु की भीर ?
दार्‌यौ कुंभ करीन्द्र कौ कहूँ केहरी बीर ॥ २३ ॥
दंति-कुंभ-सोनित-सनी लसति सिंह-द्दढ़-डाढ़ ।
मनु मंगल ससि-अंग कों दिय आलिंगनु गाढ़ ॥ २४ ॥
अहे मधुप ! गज-गंड-मदु पीजै सोचि-बिचारि ।
छिनमेंहीं या कुंभ कों दैहै सिंह बिदारि ॥ २५ ॥

*भरतपुर राज्य के वीर जाटों से अभिप्राय है ।

† सुकवि-सूदन-रचित एक सुन्दर युद्ध काव्य । इस में भरतपुर के सुप्रसिद्ध वीर-वर महाराज सूरजमल, उपनाम सुजानसिंह, की युद्ध गाथा ओजस्वी पद्यों में चित्रित की गयी है ।

बारबार अँगराय क्यों सिंह जँभाई लेत ?
मद-माते गज-जूथ कों पुनि-पुनि करतु सचेत ॥ २६ ॥
भाजि भाजि, गजराय ! अब, बारि-बिहारु बिहाय ।
गरभ गिराय मृगीन के, गयौ आय बनराय ॥ २७ ॥
कमल-केलि करिनीनु सँग, करत कहा, करिराज !
गिरितें गाजत गाज-लौं रह्यौ उतरि मृगराज ॥ २८ ॥
झपटि सिंह गज-कुंभ ज्यौं दपटि बिदार्‌यौ धाय ।
रकत-रँगीँ मुकता-कनीँ रहीँ सुकेसर छाय ॥ २९ ॥
पराधीन सबु देखियतु, बल-बीरज तें हीन ।
या कानन में, केहरी ! इक तूँहीँ स्वाधीन ॥ ३० ॥
नहिँ पावसु, नहिँ घन-घटा, भई कितै यह घोर ?
करतु मत्त मृगराजु कहुँ, बिसेंबीस बन रोर ॥ ३१ ॥
यौं मति कीजौ रोर अब, घन ! केहरि-लौं आय ।
या गयन्दिनी कौ अरे ! गरभु न कहुँ गिरि जाय ॥ ३२ ॥

वीरता और कामान्धता

जहँ नृत्यति नित चंडिका तांडव-नृत्य प्रचंड ।
कुसुम-तीर तहँ काम के होत आपु सतखंड ॥ ३३ ॥
अट्टहास करि कालिका जित क्रीड़ति बिनुसंक ।
कुसुम-बान किमि बेधिहै तित कुसुमायुध रंक ॥ ३४ ॥

जा तनु-अंबुधि में सदा खेलति अतनु-तरंग।
उमगैगी क्योंकरि, कहौ, ता मधि युद्ध-उमंग ॥ ३५ ॥

वीर-बाहु

खल-खंडन, मंडन-सुजन, अरि-बिहंड, बरिबंड।
सोहत सिंधुर-सुंड-से सुभट-चंड-भुजदंड ॥ ३६ ॥
कटि-कटि जे रण में गिरे, करि कृपाण-व्रत-त्राण।
क्यों न हुलसिकैं बारिये तिन भुजानु पै प्राण ॥ ३७ ॥
बड़े-बड़े बरबाहु के नहिँ केते बरिबंड।
दुवन-दर्प पै दलत जे, ते औरै भुज-दंड* ॥ ३८ ॥

वीर-नेत्र

होति लाख में एक कहुँ अग्नि-बर्न वह आँख।
देखतहीँ दहि करति जो दुवन-दीह-दलु राख ॥ ३९ ॥
नयन कंज, खंजन, मधुप, मद, मृग, मीन समान।
लोहितु और अँगारु पै द्वै अनुपम उपमान ॥ ४० ॥
सुभट-नयन अंगारु, पै अचरजु एकु लखातु।
ज्यौं-ज्यौं परतु उमाह-जलु, त्यौं-त्यौं धँधकत जातु ॥ ४१ ॥

* निम्नलिखित दोहे के साँचे में—

अनियारे, दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान ॥

—बिहारी

जाव फूटि रति-रँग-रली, अलसौहीँ वह आँख ।
सहज-ओज- ज्वाला-ज्वलित चिरजीवौ जुगलाख ॥ ४२ ॥
सुरत-रंगु कहँ द्दगनि में, कहँ रण-ओज-उदोतु ।
यातें उज्ज्वल होतु मुखु, वातें कज्जल होतु ॥ ४३ ॥
युद्ध-रत्त-द्दग-रक्त की कहा रक्त-सँग लाग ।
लागतु यातें दाग, वह मेटतु हियकौ दाग ॥ ४४ ॥
सहज सूर-नैननि लख्यौ सील-ओज-संचारु ।
एकैरस निबसतु तहाँ पानिप औरु अंगारु ॥ ४५ ॥
जदपि रुद्रबल-तेज कौ कियौ न प्रगटि प्रकासु ।
दिपतु तऊ अँखियानि ह्वै अंतर-ओज-उजासु ॥ ४६ ॥

खड्ग

परयौ समुझि नहिँ आजु-लौं या अचरज कौ हेतु ।
फरयौ असित असि-लता तें सुजसु-चारु-फलु सेतु ॥ ४७ ॥
जदपि इतो पानिप चढ्यौ, अचरजु तदपि महान ।
नितप्रति प्यासीही रही, लही न तृप्ति कृपान ॥ ४८ ॥
बसति आपु लघु म्यान में वह कृपान लघुगात ।
त्रिभुवनमें न समातु पै सुजसु तासु अवदात ॥ ४९ ॥

प्रलय-कारिनी तुव, छता* ! लपलपाति तरवार ।
खात-खात खल-सीसु जो लई न अजहुँ डकार ।। ५० ।।
बसै जहाँ करबाल ! तूँ, रमै तहाँ किमि बाल ?
एकसंग निबसति कहूँ ज्वाल मालती-माल ।। ५१ ।।
धारि सील, असि-बालिके ! अब तूँ भई सयानि !
अरी हठीली ! कित तजी वह इठलाहट-बानि ? ।। ५२ ।।
तड़ित और तरवार में समता किमि ठहराय ।
ज्यौंहीँ यह चमकति दमकि, त्यौंहीँ वह दुरि जाय ।। ५३ ।।
लहरति, चमकति चाव सोँ तुव तरवार अनूप ।
धाय डसति, चौंधति चखनि, नागिनि दामिनि रूप ।। ५४ ।।
वह नाँगी तरवारहू बनी लजीली नारि ।
नहिँ खाल्यौ मुख म्यान तें, ह्वै मनु परदावारि ।। ५५ ।।
करति मरम-तर वार जो, सोइ प्रखर तरवार ।
जानति कबहुँ कृपा न करि, कहिय कृपान करार ।। ५६ ।।
सुभट लाल ! असि-दूतिका ठाढ़ी सुमुखि-सयानि ।
मानिनि बसुधा-बाल कौ यही गहावति पानि ।। ५७ ।।
रमति अंत नहिँ कंत तजि, कुल-कामिनि तरवारि ।
कहूँ दुहागिन होति है सती सुहागिन नारि ।। ५८ ।।

* बुन्देलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल ।

रण-नायक-भामिनि तुहीं, कुल-कामिनि करबाल !
अंतहुँ प्रीतम-कंठ तूँ भई लपटि रति-माल ।। ५९ ।।
सोभित नील असीन पै रुधिर-बिन्दु-कृत जाल ।
लसति तमाल-लतान पै मनहुँ बधूटी-माल ।। ६० ।।

धनुष-बाण

देखतहीं वह कुटिल धनु कुटिल सरल ह्वै जात ।
त्यौं अरि अथिर थिरात, ज्यौं बिषम बान लहरात ।। ६१ ।।
बिसिख-भुजङ्ग तुव फुङ्करत, उड़ि नभ-लगि मँड़रात ।
अरि-अपजसु, तेरो सुजसु सँग लपेटि लै जात ।। ६२ ।।
छूटतहीं परचंड सर, मारतंड-लौं धाय ।
भौननि प्रतिपच्छीनु के तिमिर देत चहुँ छाय ।। ६३ ।।
इत सर सारँग पै चढ़तु, चढ़ि रागतु रण-रागु ।
उत अरि-अँगना-अङ्ग तें उतरतु सहज सुहागु ।। ६४ ।।
खैंचतु धनु-गुण कर्ण लगि, कर्ण पार्थ-हिय-साल ।
स्वर्ण-ज्वालु चित्रतु, किधौं गुहतु दामिनी-माल ।। ६५ ।।

शिशु-वीरोक्तियाँ

वह शकुन्तला-लाड़िलो कबतें माँगतु रोय ।
"खड्ग-खिलौना खेलिबे अबहिँ लाय दै मोय" ।। ६६ ।।

गो-घातक वा बाघ की, जननि ! खैंचिहौं पूँछ ।
तीखन डाढ़ैं तोरिहौं, अरु उखारिहौं मूँछ ॥ ६७ ॥
दै तौ, मैया ! नैक तूँ मेलो[1] तील[2]-कमान ।
चंदै भूमि गिलाउँगो[3], मालि[4] अचूक निछान[5] ॥ ६८ ॥
ऊँ ऊँ, मैं तौ लैउँगो ओई तील-कमान ।
मालूँगो[6] म्लगलाज[7] मैं, घालि अचूक निछान ॥ ६९ ॥
मति दै चकली[8] तूँ हमैं, मति दै गैंद, अजान !
अम[9] तौ ओई लैयँगे लखन-लाम[10]-धनु-बान ॥ ७० ॥
गहि पटुका बलराम कौ रह्यौ मचलि नँदलाल ।
"दाऊ ! मोय मँगाय दै छोती-छी[11] तलबाल[12]" ॥ ७१ ॥
भावतु मैया ! मोय नहिँ फीको चंदन भाल ।
दै लगाय तूँ बस वही नीको टीको लाल ॥ ७२ ॥
सीय-हरनु लखि स्वप्न में उठ्यो कान्ह अतुराय ।
धनु मेरो, दाऊ ! कितै, दै तौ नैक उठाय ॥ ७३ ॥

प्रेम और वीरत्व

प्रेम-मरमु जानैं कहा बिषयी कायर कूर ।
इक साँचो रणसूरहीँ पहिँचानतु रसमूर ॥ ७४ ॥

---

१ मेरो । २ तीर । ३ गिराऊँगो । ४ मारि । ५ निशान । ६ मारूँगो । ७ मृगराज । ८ चकरी । ९ हम । १० राम । ११ छोटी-सी । १२ तलवार ।

हित-जौहरु जानै कहा यह मनोज-मद-चूर ?
परखि पारखीही सकै प्रेम-रत्न रण-सूर ॥ ७५ ॥
और बनायें बनत, पै द्वै न बनत केहुँ बार ।
मरजीवा मरमी रसिक, अरु सिरु-सौंपनहार ॥ ७६ ॥
सब तौ साँचे में ढरे, ढरे न ए द्वै ढार ।
प्रेम-मेंड़-रखवार, औ सीसु-चढ़ावनहार ॥ ७७ ॥
रे बिषयी ! प्रेमी बनत, नैकु न लागति लाज !
केते कठिन-कपोत-ब्रत-पालनहारे आज* ? ॥ ७८ ॥
निर्विकार, निर्लेप, नित, निखिल-ब्रह्म-सुख-सारु ।
सोइ प्रेमु बिषयीनु कों भयौ आजु खेलवारु † ॥ ७९ ॥
जनि गनियौ खेलवार यौं, कठिन प्रेम-असि-धार ।
चातक-मीन-कपोत-ब्रत कहँ अब पालनहार ॥ ८० ॥
मथि-मथि अच्छर-निधि मरे, कढ्यो न कछुवै सार ।
इक प्रेमी, इक सूरमा भये उतरि भव-पार ॥ ८१ ॥
सेना-पति सत-सहसहूँ सकैं जाहि नहिं जीति ।
ताहि स्वबस करि लेतिहै सहज प्रीति की रीति ॥ ८२ ॥

* है इत लाख कपोत-ब्रत, कठिन प्रेम की चाल ।
मुख तें आह न भाखही, निज सुख करहिं हवाल ॥
—हरिश्चन्द्र ।

† गिरि तें ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हजारु ।
वहै सदा पसु-नरनु कों प्रेम-पयोधि पगारु ॥
—विहारी ।

और अस्त्र केहि काम के, प्रेम-अस्त्र जो साथ ?
प्रेम-रथी के हाथ हैं महारथिनु के माथ ॥ ८३ ॥
कृष्ण-प्रेम-रस-भरित, कै पूरित समर-उछाहु ।
सुर-सरिताहूतैँ परमपावनु अश्रु-प्रवाहु ॥ ८४ ॥

मातृ-शिक्षा

क्यों न चढ़ावत सिर-चढ्यौ ललन, बान धनु तानि ?
किन खेलत खिन खड्ग सों जासु खिलौहीँ बानि ॥ ८५ ॥
खंड-खंड ह्वै जाव, पै धर्म न तजियौ एक ।
सपथ, लाल ! या खड्ग की, रहियौ गहि कुल-टेक ॥ ८६ ॥
कह्यौ माय, मुख चूमिकैँ, कर गहाय करबाल ।
"जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल !" ॥ ८७ ॥
चूर-चूर ह्वै अंतलौं रखियौ कुल की लाज ।
जननि-दूध-पितु-खड्ग की अहै परिच्छा आज ॥ ८८ ॥
पाठु पढ़ावति मातु नित, लै उछंग निज लाल ।
"बत्स ! बीर-ब्रत धारियौ, धरि पछारियौ काल" ॥ ८९ ॥
लोटि-लोटि जापै भये धूरि-धूसरित, आज ।
वत्स ! तुम्हारे हाथ है ता धरती की लाज ॥ ९० ॥

लिखत मिटावत, लाल ! क्यों चक्रव्यूह कौ चित्र ?
कबहुं अघावैही नहीं, सुनि अभिमन्यु-चरित्र ! ।। ९१ ।।

शूर-साधन

होत सूर सरनाम कै चूर-चूर निज अङ्ग ।
पिसत-पिसत ज्यों सिला पै लावति मेंहदी रंग* ।। ९२ ।।

रण-यात्रा और ज्योतिष

अब पत्रा देखत कहा, सोधत सुदिनु, गँवार !
परे कूदि रण-कुंड वै, रहे तोरि गढ़-द्वार ।। ९३ ।।
मिलतु न पत्रा में सुदिनु, भिरत न कादर मंद ।
नहिँ सोधत रण-बाँकुरे नखत, बार, तिथि, चंद ।। ९४ ।।
चलत कबहुँ दिन सोधि तुम, कबहूँ छींक बचाय ।
किन इन थोथे टोटकनु दई अनी बिचलाय ? ।। ९५ ।।
सुदिनु ज्योतिषी तें कहा सोधवावत रण-हेत ?
चढ़ि आये वै दुर्ग पै, तुम इत परे अचेत ।। ९६ ।।

---

* ता हमचो हिना सूदह न गरदी तहे संग ।
हरगिज़ बक़फ़े पाये निगारे न रसी ॥
अर्थात्, जब तक मेंहदी की तरह पत्थर के नीचे पिस न जाओ, हरगिज यार के पाँव के तलुए तक नहीं पहुँच सकते ।

अप्रिय और प्रिय

गावतु गायकु बीन लै बिरही रागु बिहागु ।
नाहिँ अलापतु, आजु क्यों मङ्गल मारू रागु ॥ ९७ ॥
फूँकत पीँ-पीँ बाँसुरी, रह्यौ न यामें स्वादु ।
है त्रिलोक में भरि गयौ संगर-संख-सुनादु ॥ ९८ ॥
लावत रँगि रँगरेज ! क्यों पगियाँ रंग-बिरंग ?
अबतौ, बस, भावतु वहै सुंदर रंग सुरंग ॥ ९९ ॥

चित्राङ्कण

जियत बाघ की पीठि पै धनु-धारीनु चढ़ाय ।
क्यों न, चितेरे ! चित्त तूँ उमँगि उतारत आय ? ॥ १०० ॥

तीसरा शतक

शक्ति-स्तुति

शक्ति-शक्ति ! शिव-शक्ति जय, जगत-ज्योति, जगदम्ब !
आरत-भारत-आर्त्ति कों क्यों न हरति अबिलम्ब ? ॥ १ ॥
त्रिभुवनेश्वरी ! त्रयनयनि ! जय, त्रिशूलिनी अम्ब !
जन-त्रिताप-उपशमन में क्यों अब करति बिलम्ब ! ॥ २ ॥
महिष-शूलिनी ! शूलिनी ! मौलि-मालिनी ! त्राहि ।
जय जगदम्ब, कपालिनी ! प्रणत-पालिनी, पाहि ॥ ३ ॥
प्रलय-हासु जब कालिका करति स्वभाव स्वछन्द ।
दहक-दंत-दुति-दमक तें परतु सूर्यशत मन्द ॥ ४ ॥
अट्टहासु करि, धारि त्यौं मौलि-माल अविलम्ब ।
आदिनटी शिव-सँग नटी प्रलय-नाट्य जग-अम्ब ॥ ५ ॥
कर्षतु रवि-रथ-चक्र जो, नित नभ ताण्डव माहँ ।
रहौ, अम्ब ! जन-सीस पै वही बाहँ की छाहँ ॥ ६ ॥
या भारत-आरति हरौ सोइ शक्ति द्रुत धाय ।
जासु प्रलय-पगु परतहीँ शवहू शिव ह्वै जाय ॥ ७ ॥

कब कौ ठाढ्यौ पौंरि पै, सुनति नाहिँ कछु, अम्ब !
कहौ, कहाँ तुव अंक तजि सिसुहिँ आन अवलम्ब ? ॥ ८ ॥

निबलनु कों साँसत सबल तुव देखत बसुयाम ।
कहा जानि, धार्यौ जननि ! 'महिष-मर्दिनी' नाम ? ॥ ९ ॥

कलपि-कलपि भूखन मरति तुव संतति अभिराम ।
कहा जानि, धार्यौ जननि ! 'अन्नपूरणा' नाम ? ॥ १० ॥

राघव-प्रतिज्ञा

जेहि शर मधु-कैटभ हने, किये त्रिसिर खर खीस ।
खल ! ताही तें काटिहौं भुजाबीस दससीस ॥ ११ ॥

सौमित्रि-प्रतिज्ञा

जौ न घालि घननाद कों यमपुर आजु पठाउँ ।
हौं रामानुज मुख कबौं जियत न औध दिखाउँ* ॥ १२ ॥

कह्यौ कोपि सौमित्रि यौं ध्याय राम-युग-पाद ।
"कै अब मेरो बानहीँ, कै तैंहीँ, घननाद !" ॥ १३ ॥

---

*जौं तेहि आजु बधे बिनु आवउँ । तौ रघुपति-सेवक न कहावउँ ॥
जौ सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतउँ रघुबीर दुहाई ॥
[राम-चरित-मानस]

मारुति-प्रतिज्ञा

उठि ठाढ़ो ह्वैहै जबै सधनु सुमित्रा-नन्द।
तबहिँ पसीना पोंछिहौं पथ-श्रम कौ, रघुचन्द ! ॥ १४ ॥
जौलगि मूरि न लाउँ मैं मारुति तौलगि, तात* !
करि सुधि मो सिसु-केलि की मुख न खोलियौ प्रात ॥ १५ ॥

भीष्म-प्रतिज्ञा

रहिहौं अस्त्र गहाय कैँ रखि निज प्रण की लाज।
कै अब भीषमहीँ यहाँ, कै तुमहीँ, यदुराज ! ॥ १६ ॥
शरनि ढाँपि रवि-मंडलहिँ, शोणित-सरित अन्हाय।
तेरीही सौं तोहिँ हरि ! रहिहौं अस्त्र गहाय ॥ १७ ॥
तेरीही सौं, युद्ध-मधि, तेरेहीँ बल आज।
हौं शान्तनु-सुत मेटिहौं प्रण तेरो, यदुराज† ॥ १८ ॥
इत पारथ-रथ-सारथी, उत भीषम रण-धीर।
तिलहूँ नहिँ टारे टरैं, दुहूँ बज्र-प्रण-वीर ॥ १९ ॥

---

*सूर्य से तात्पर्य है।

† आजु जौ हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा जननी कों, सान्तनु-सुत न कहाऊँ ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडौं, कपिधुज सहित डुलाऊँ।
इती न करौं सपथ मोहिँ हरि की, छत्रिय-गतिहिँ न पाऊँ ॥
पांडव-दल सनमुख ह्वै धाऊँ, शोणित-सरित बहाऊँ।
'सूरदास' रणभूमि बिजय बिन, जियत न पीठि दिखाऊँ ॥

मुख श्रम-सीकर, दृग अरुण, रण-रज-रंजित केश ।
फहरतु पट्ट, गहि चक्र हरि धाये सुभट-सुवेश ॥ २० ॥

कच रज-रंजित, रुधिर-मिलि झलकत श्रमकण अंग ।
फहरतु पट्ट, गहि चक्र हरि धाये करि प्रण-भंग* ॥ २१ ॥

जन-वत्सल पारथ-सखा, धन्य धन्य, यदुराज !
राखी निज प्रण मेंटि कैँ शान्तनु-सुत की लाज ॥ २२ ॥

प्रण कीनों बहु बीर जग, टेकहुँ गही अनेक ।
पै भीषम-ब्रत आजुलौं है भीषम-ब्रत एक ॥ २३ ॥

समसरि कासों कीजियै, मिल्यौ नाहिँ उपमान ।
भीषम-सो भीषम भयौ वह भीषम-ब्रतवान ॥ २४ ॥

अर्जुन-प्रतिज्ञा

भानु-अस्तलौं आजु जौ बच्यौ जयद्रथ-जीव ।
चिता लाय तनु जारिहौं, तोरि-तारि गांडीव ॥ २५ ॥

लै न सक्यौ, हरि ! आजु जौ अधम जयद्रथ-जीव ।
तौ पारथ हौं क्लीव अब नहिँ लैहौं गांडीव ॥ २६ ॥

* वा पटपीत की फहरान ।
कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिँ बिसरति वह बान ॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कचरज की लपटान ।
मानों सिंह सैल तें निकस्यौ, महामत्त गज जान ॥
जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यौ, मेटि वेद की कान ।
सोई 'सूर' सहाय हमारे निकट भये हैं आन ॥

कन्ह-प्रतिज्ञा

'तो रक्खों ढिल्लिय तखत, भुजन ठिल्लि कनवज्ज ।'*
बज्ज-पैज असि कन्ह-लौं करनहार को अज्ज ? ॥ २७ ॥

बादल-प्रतिज्ञा

जौं न स्वामि निज उद्धरौं, बद्दल नाम लजाउँ ।
पिऊँ न जल्ल मेवाड़ कौ, जियत न मूँछ रखाउँ† ॥ २८ ॥
इन भुजान तें बैरि-दल जौ न ठेलि लै जाउँ ।
जीवित मुख न दिखाउँ मैं, बद्दल नाम लजाउँ ॥ २९ ॥

---

* इन भुजन ठेलि जयचाँद-दल, तुव रक्खों ढिल्लिय तखत ॥
(पृथिवीराज-रासो)

† बादशाह अलाउद्दीन के कारागार से अपने पति महाराज भीमसी (भीमसिंह) को मुक्त कराने के लिए जब महारानी पद्मिनी अपने चचेरे भाई बादल की सहायता लेने उसके पास गई, तब उसने जो वीर-प्रतिज्ञा की, उसका वर्णन महाकवि मलिक मुहम्मद जायसीने कैसा फड़कता हुआ किया है—

उए अगस्त हस्ति जब गाजा । नीर घटे घर आइहि राजा ॥
बरषा गये,अगस्त जौ दीठिहि । परिहि पलानि तुरंगम पीठिहि ॥
बेधौं राहु, छोड़ावहुँ सूरू । रहै न दुख कर मूल अँकूरू ॥

अपनी माता से, युद्ध-यात्रा करते समय, बादल कहता है—

मातु ! न जानसि बालक आदी । हौं बादला सिंघ रनबादी ॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा । सिंघ क जाति रहै किमि छपा ॥
तौलगि गाज, न गाज सिंघेला । सौंह साह सौं जुरौं अकेला ॥
को मोहिं सौंह होइ मैमंता । फारौं सूंड, उखारौं दंता ॥
जुरौं स्वामि सँकरे जस ढारा । पेलौं जस, दुरजोधन भारा ॥
अंगद कोपि पाँव जस राखा । टेकौं कटक छतीसौ लाखा ॥
हनुवँत सरिस जंघ बर जोरौं । दहौं समुद्र, स्वामि बँदि छोरौं ॥
[पदमावत]

प्रताप-प्रतिज्ञा

मूँछ न तौलौं ऐंठिहौं, हौं प्रताप भुज-हीन ।
करि पायौ जौलौं न मैं गढ़ चितौर स्वाधीन ॥ ३० ॥
महल नाहिँ पगु धारिहौं, रहिहौं कुटी छवाय ।
हौं प्रताप जौलौं न ध्वज दई फेरि फहराय ॥ ३१ ॥

वीर-प्रतिज्ञा

हौंहूँ सिंह-कुमार, जो वह खल गज मदमंत ।
कुंभहिँ नखनु बिदारिहौं, अरु उखारिहौं दंत ॥ ३२ ॥
हौंहूँ आजु अगस्त्य, जो वह अभिमान-समुद्र ।
ताहि अँचैहौँ अंजुरिनु, सहज सोखिहौं छुद्र ॥ ३३ ॥
हौंहूँ मघवा-बज्र, जो वह खल भूधर-शृङ्ग ।
दैहौं खेह मिलाय यौं, चूर-चूर करि अंग ॥ ३४ ॥

वीर-विदा

मिलियौ तहँ परखति, प्रिये! मिलिहौँ सरबसु बारि ।
बिसिख-हारु हौँ पैन्हि, तुम ज्वाल-माल उर धारि ॥ ३५ ॥
रहियौ यौंहीँ भेंटिबे, प्रिये ! बढ़ायेँ बाहिँ ।
भेदि भानु-मंडलहिँ मैँ मिलिहौँ सुर-पुर माहिँ ॥ ३६ ॥
हौँ तौ, पिय ! प्रथमहिँ चली, भली भाँति रति लालि ।
आय भेंटियौ मोहिँ उत, बेगि बीर-ब्रत पालि ॥ ३७ ॥

सजनी ! पिउकों भेंटिलै भरि भुज अंतिम बार ।
हित-बगिया तें पुहुप लै करि साजन-सिंगार ॥ ३८ ॥

युद्ध-दर्शन

सुन्यौ प्रलय-घन-घोर-लौं जब सैनिक रण-शंख ।
किलकि-किलकि कूदे समर, भरि उड़ान बिनु पंख ॥ ३९ ॥
धौल धौरहर ढाय महि, करि शिव बिधि कौं ख्याल ।
धूम-धौरहर नील नभ सृजति तोप बिकराल ॥ ४० ॥
चली चमाचम चोप सों चकचौंधिनि तरवार ।
पटी लोथ पै लोथ, त्यौं बही रक्त-नद-धार ॥ ४१ ॥
नहिँ यह झरना गेरु कौ, नाहिँ शृङ्ग यह श्याम ।
असि-विदीर्ण-करि-कुंभ तें स्त्रवतु शोण अविराम ॥ ४२ ॥
कूदतु अरि-करि-कुंभलगि, छुवतु व्यूह कौ छोरु ।
बरजोरी बरजेहुँ पै करतु तुरँगु मुँहजोरु ॥ ४३ ॥
तुरँग, तोप, तरवार तहँ निज-निज पूरत काजु ।
धूरि-धूम-लोहित-मयी सृजत सृष्टि मनु आजु ॥ ४४ ॥

स्वदेश-परिचय

रमा, भारती, कालिका करति कल्लोल असेस ।
बिलसति, बोधति, संहरति जहँ, सोई मम देस ॥ ४५ ॥

राजस्थान

मिली हमैँ थर्मोपिली ठौर-ठौर चहुँपास।
लेखिय राजस्थान मेँ लाखनु ल्यूनीडास* ॥ ४६ ॥

चित्तौर

मनु मेरो चित्तौर पै लखि तेरो जस-थंभ।
भ्रमतु, हँसतु, रोवतु अहो! सुभट-मौलि नृप कुंभ† ! ॥ ४७ ॥
तपत बात उर लाय, फिरि सेवहु धीर समीर।
प्रथम जाहु चित्तौर-गढ़, पुनि बिरमहु कसमीर ॥ ४८ ॥

* "राजस्थान में कोई छोटा-सा भी राज्य ऐसा नहीं है, कि जिसमें थर्मोपिली-जैसी रण-भूमि न हो, और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर मिले, जहाँ लियोनिडास-जैसा वीरपुरुष पैदा न हुआ हो।" —जेम्स टॉड।

सन् ४८० ई० से पूर्व फ़ारस के बादशाह ज़र्कसीज़ ने बड़ी भारी सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई की। उस समय उस देश में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, जिन्होंने मिलकर अपने में से स्पार्टा के वीर राजा लियोनिडास को थर्मोपिली की घाटी में ८००० सैनिकों के साथ ईरानियों का सामना करने को भेजा। ईरानियोंने कई बार उस घाटी को जीत लेने की चेष्टा की, पर हर बार उन्हें हारकर पीछे लौटना पड़ा। अन्त में, एक विश्वासघाती की मदद से शत्रु पीछे से पहाड़ पर चढ़ आये। अपनी फ़ौज में से बहुत-से लोगों का ईरानियों की तरफ़ मिलजाने का शक होने से लियोनिडास ने सिर्फ़ १००० सैनिकों को पास रख सेना को निकाल बाहर कर दिया और आप अपूर्व वीरता से लड़कर वहीं मारा गया। उसकी सेना में से, कहते हैं, सिर्फ़ एक ही मनुष्य जीवित बचा था।

† महाराणा कुम्भने वि० सं० १४९७ में मालवे के सुलतान महमूदशाह ख़िलजी को प्रथम वार परास्त कर उसकी यादगार में अपने इष्टदेव विष्णु के निमित्त यह कीर्ति-स्तंभ बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १५०५ माघ बदी १० को हुई थी। × × × × × यह भारतवर्ष में अपने ढङ्ग का एक ही स्तंभ है। वास्तव में, यह हिन्दुओं के पौराणिक देवताओं का एक अमूल्य कोश है। प्राचीन मूर्तियों का ज्ञान संपादन करनेवालों के लिए यह एक अपूर्व साधन है।

[राजपूताने का इतिहास—पहला खंड, ३५५]

जनि सुपूत बापा* सुभट, साँगा†, कुंभ‡ प्रताप ।
बीर-जननि चित्तौर ! तूँ दल्यौ दुवन-दल-दाप ॥ ४६ ॥

वह जौहरु§, रण-रंगु वह, वह जूझनु जुरि जङ्ग ।
अजहुँ चित्र चित्रतु वहै गिरिअरावली-शृङ्ग ॥ ५० ॥

दहलति ही दिल्ली दलित, सुनि चितौर ! तुव धाक ।
क्यों न कहैं फिरि तोहिँ हम आजु हिन्द की नाक ॥ ५१ ॥

लोहागढ़ त्यौं सिंहगढ़, बांधव, रणथंभौर ।
औरहुँ गढ़, सिरमौरु पै सब मैँ गढ़ चित्तौर ॥ ५२ ॥

मारवाड़

सौर्य्य-सरित-सिंचित जहाँ जूझन-खेत हमेस ।
मारवाड़-अस देस कों कहत मूढ़ मरुदेस ॥ ५३ ॥

---

* चित्तौर का एक महाप्रतापी राजा, जिसका राज्याभिषेक, भाटों की ख्यातों के अनुसार, संवत् १९१ में हुआ था । श्रीयुक्त पंडित गौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझाने लिखा है, कि बापा किसी राजा का नाम नहीं, किंतु उपनाम था, और पीछे से तो वे यह भी भूल गये, कि किस का उपनाम बापा था ।

† महाराणा संग्रामसिंह ।

‡ महाराणा कुम्भकर्ण, जिन्हें राणा 'कुम्भा' भी कहते हैं ।

§ एक व्रत, जिसमें युद्ध के समय राजपूत-बीरांगनाएँ सतीत्व-रक्षा के निमित्त धधकती हुई अग्नि में अपने प्यारे बाल-बच्चों-सहित प्रवेश करती थीं ।

हल्दीघाट

अहो सुभट-सोनित-सन्यौ, दृढ़व्रत हल्दीघाट* ।
अजहूँ हठी प्रताप की जोहतु ठाढ़ो बाट ॥ ५४ ॥
साँचेहुँ, हल्दीघाट ! तुव छाती कुलिस-प्रचंड ।
बिछुरत बन्धुप्रताप के भई न जो सतखंड ॥ ५५ ॥

बांधव गढ़

याही बांधव-दुर्ग† पै बिरुझे बाघ बघेल ।
यहीँ गर्ज्जि रण-कालिका करी किलकि रण-केल ॥ ५६ ॥

भरतपुर-दुर्ग

एइ भरतपुर-दुर्ग है, दुजय दीह भयकारि ।
जहँ जट्टन के छोहरे दिये सुभट्ट पछारि‡ ॥ ५७ ॥
तुम। ब्रज-जाटनु-दुर्ग कौ, कहु, को ढाहनहारु ?
जासु आपु रखवारु भो श्रीब्रजराज-कुमारु ॥ ५८ ॥

---

* मेवाड़ की एक सुप्रसिद्ध घाटी और युद्ध-स्थली, जहाँ पर महाराणा प्रतापसिंह और बादशाह अकबर की सेना में घोर युद्ध हुआ था ।

† रीवाँ राज्य का सुप्रख्यात 'बाँधवगढ़' नाम का प्राचीन क़िला । बघेलखंड में इसकी टक्कर का कोई भी क़िला नहीं है । इसी की बदौलत बघेलोंने अपने प्रबल शत्रुओं के कई बार दाँत खट्टे किये ।

‡ यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

आठ फिरङ्गी, नौ गोरा । लड़े जाट के दो छोरा ॥

बुन्देलखंड

इतहूँ तौ रण-चंडिका वैसोइ खेली खेल।
राजथान तेँ घटि कहा हमरो खंडबुँदेल ॥ ५९ ॥
यह सुभूमि सोनित-सनी, यह पहार, यह धार।
हम बुँदेल-खंडीनु कों यहँईं स्वरग-बिहार ॥ ६० ॥
लोटि-लोटि बज्रांग भे जहँ चँदेल बुन्देल।
जन्म जन्म ता भूमि पै, प्रभु ! खिलाइयौ खेल ॥ ६१ ॥
देखि ओरछा-भौन ए बिमल बेतवै-तीर।
सुनि हरदौल-कथा* अजौं मनु ह्वै जातु अधीर ॥ ६२ ॥
भूपति मधुकरसाह-से†, बीरसिंह-से‡ बीर।
जहँ बिहरे बिचरे, यहै वही बेतवा-तीर ॥ ६३ ॥

---

* देखिये टिप्पणी—पहला शतक; ३१ दोहा।

† इनके शासन-काल में मुग़ल-सम्राट् अकबरने बुन्देलखंड-विजय करने का कई बार प्रयत्न कियो, पर उनके सारे उद्योग असफल ही रहे। यह महाराज शूरवीर होने के अतिरिक्त सफल शासक एवं परम भागवत भी थे। महाकवि केशवदासने इनके विषय में लिखा है—

जिनके राज रसा बसे 'केशव' कुशल किसान।
सिंधु-दिशा, नहिँ बारही पार बजाय-निसान ॥
सबल शाह अकबर-अवनि जीति लई दिसि चारि।
मधुकरसाह नरेश गढ़ तिनके लीने मारि ॥
खान गनै सुलतान कों राजा रावत वादि।
हारे मधुकरसाह सों आपुन साह मुरादि ॥

‡ वीरसिंहदेव महाराज मधुकरशाह के पुत्र थे। इन्होंने बादशाह अकबर के इतिहास-प्रसिद्ध मन्त्री अबुल-फ़ज़ल को मारा था। इनकी युद्धप्रियता बुन्देलखंड में प्रसिद्ध है। 'वीरसिंह-देव-चरित्र' में कविवर केशवदासने इनकी वीर विरुदावली का अच्छा वर्णन किया है।

ओही तुंगारण्य यह, वही बेतवागंग* ।
वही ओरछा, पै कहाँ यहाँ आजु वह रंग ॥ ६४ ॥
झाँसी-दुर्गम-दुर्ग धनि, महिमा अमित अनूप ।
जहाँ चंचला† अवतरी प्रगट चंडिका-रूप ॥ ६५ ॥
धनि, रण-मत्त गठेवरा‡ ! गौरब-गरब-निकेत ।
हमरे खंडबुँदेल कौ साँचेहुँ तूँ कुरुखेत ॥ ६६ ॥
है यह वही गठेवरा, जहाँ जूझि मजबूत ।
रहे खेत गृह-युद्ध में सवा लाख रजपूत ॥ ६७ ॥

---

*महाकवि केशवदास लिखते हैं—

नदी बेतवै-तीर जहँ तीरथ तुङ्गारन्न ।
नगर ओरछो बहु बसै धरनीतल में धन्न ॥

† महारानी लक्ष्मीबाई ।

‡ बुन्देलखंडान्तर्गत छत्रपुर-राजधानी से ३ मील पूर्व एक सुप्रसिद्ध रणस्थल । नवाब शुजाउद्दौला ने अपने विश्वास-पात्र और वीर-वर गोसाईं अनूपगिरि, उपनाम हिम्मत बहादुर, को संवत् १८३५ के लगभग एक बड़ी सेना देकर बुन्देलखंड पर विजय प्राप्त करने को भेजा । हिम्मत बहादुर बुन्देलखंड-निवासी था, पर था पूरा देश-द्रोही । अस्तु; उस समय महाराज गुमानसिंह बाँदे में राज्य करते थे । नोने अर्जुनसिंह पँवार गुमानसिंहजी के सेनापति थे । इन्होंने हिम्मतबहादुर की फौज़ को ऐसा हराया, कि उसके पैर उखड़ गये । नवाब के दूसरे सेनापति करामतखां को तो यमुना तैर कर किसी तरह अपने प्राण बचाने पड़े । नोने अर्जुनसिंहने बुन्देलखंड की लाज रख ली । पर भारत की चिरसहेली फूट बुन्देलखंड की स्वाधीनता न देख सकी । महाराज छत्रसाल के वंशधरोंने आपस में लड़ना शुरू कर दिया । नोने अर्जुनसिंह पन्नावाले सरनेतसिंहजी का पक्ष ग्रहण कर पन्ना के मन्त्री बेनीहुजूरी से, जिसके वंशधर अब मैहर में राज्य करते हैं, लड़ने को उद्यत हुए । इस युद्ध में समस्त बुन्देलखंड के बुन्देले एवं अन्य राजपूत किसी-न-किसी की तरफ़ से लड़ने को शामिल हुए । गठेवरा के मैदान में युद्ध हुआ । इस युद्ध को 'बुन्देलखंड का महाभारत' कहते हैं । बेनीहुजूरी इस लड़ाई में मारा गया और खेत अर्जुनसिंह के हाथ रहा । इस अभागे गृह-युद्ध में बुन्देलखंड-जैसा अखंड शक्तिशाली देश भी खंड-खंड हो गया ।

है यह वही गठेवरा, जहँ अखंड बलचंड।
खंड-खंड गृह-युद्ध तें भयौ बुँदेला-खंड ॥ ६८ ॥

यहिँ आल्हा-ऊदल* लरे, भिरे मरद मलखान†।
यही महोबा-भूमि है, उन बीरनु की खान ॥ ६९ ॥

सह-प्रताप आरावली, सहित सिवा सह्याद्रि।
चंद्र-चंद्रिका-इव सदा, छत्रसाल बिंध्याद्रि ॥ ७० ॥

पराधीनता

पराधीनता-दुख-भरी कटति न काटें रात।
हा ! स्वतंत्रता कौ कबै ह्वैहै पुण्य प्रभात ॥ ७१ ॥

अथयौ ओज-प्रताप-कौ आरत भारत-माँझ।
अब तौ आई दुखमई अधिक अँधेरी साँझ ॥ ७२ ॥

निजता सों तौ बैरु अब, है परतासों प्रीति।
निज तौ पर, पर निज भये, कहा दई ! यह रीति ॥ ७३ ॥

पर-भाषा, पर-भाव, पर-भूषन, पर-परिधान।
पराधीन जन की अहै यही पूर्ण पहिँचान ॥ ७४ ॥

---

* महोबे के अधीश चंदेल परमाल के बनाफर सामन्त । इन दोनों वीर भ्राताओं की विरुदावली के ओजस्वी गीत आजभी गाँव-गाँव में 'आल्हा' के नाम से गाये जाते हैं। आल्हाकाव्य, वास्तव में, अपनी शैली का एकमात्र वीर काव्य है।

† महोबे का एक महान् साहसी और वीर योद्धा। चँदेलों के इतिहास में यह भी अपना एक विशेष स्थान रखता है। महोबे की लड़ाई में वीरवर मलखान काका कन्ह के हाथ से मारा गया था।

पतित वहै, नास्तिक वहै, रोगी वहै मलीन ।
हीन, दीन, दुर्बल वहै, जो जग अहै अधीन ॥ ७५ ॥
दंभ दिखावतु धर्म कौ यह अधीन मति-अंध ।
पराधीन अरु धर्म कौ, कहौ कहा संबंध ? ॥ ७६ ॥
जैहै डूबि घरीक में भारत-सुकृत-समाजु ।
सुदृढ़ सौर्य-बल-बीर्य कौ रह्यौ न आजु जहाजु ॥ ७७ ॥
कत भूल्यौ निज देस, मति भई और-तें-और ।
सहज लेत पहिँचानि जब पसु-पंछिहुँ निज ठौर ॥ ७८ ॥
जरि अपमान-अँगार तें अजहुँ जियत ज्यौं छार ।
क्यों न गर्भ तें गरि गिरयौ, निलज नीच भू-भार ! ॥ ७९ ॥
लियौ धारि पर-भेष अरु पर-भाषा, पर-भाव ।
तुम्हैं परायो देखि यौं, क्यों न होय हिय घाव ? ॥ ८० ॥
दई छाँड़ि निज सभ्यता, निज समाज, निज राज ।
निज भाषाहूँ त्यागि तुम भये पराये आज ॥ ८१ ॥
परता में तुम परि गये, नहिँ निजता कौ लेस ।
निज न पराये होयँ क्यों बसहु जाय परदेस ॥ ८२ ॥
ह्वै पर अब अपनेनु तें करत कहा तुम आस !
रँगे सियारनु पै कहौ करतु कौन विश्वास ? ॥ ८३ ॥

मरन भलो निज धर्म में, भय-दायक परधर्म* ।
पराधीन जानैं कहा, यह निज-पर कौ मर्म ।। ८४ ।।

चाटत नित प्रभु-पद रहौ, दिन काटत बिन लाज ।
जूँठ टूकही अब तुम्हैं, है त्रिलोक कौ राज ।। ८५ ।।

मनु लागत न स्वदेस में, यातें रमत बिदेस ।
परपितु सों पितु कहत ए, तजि निज कुल, निज देस ।। ८६ ।।

आस देस-हित की हमैं नहिँ तुम तें अब लेस ।
'जैसे कंता घर रहे, तैसे रहे बिदेस' ।। ८७ ।।

हम अधीन हिन्दून कौ, कहौ, कौन अब काज ?
पाप-पंक धोवैं न क्यों, मिलि रोवैं सब आज ।। ८८ ।।

स्वाधीनता

निज भाषा, निज भाव, निज असन-बसन, निज चाल ।
तजि परता, निजता गहूँ, यह लिखियौ, बिधि ! भाल ।। ८९ ।।

तुच्छ स्वर्गहूँ गिनतु जो इक स्वतंत्रता-काज ।
बस, वाही के हाथ है आज हिन्द की लाज ।। ९० ।।

भीख-सरिस स्वाधीनता कन-कन जाचत सोधि ।
अरे, मसक की पाँसुरिनु पाट्यौ कौन पयोधि ? ।। ९१ ।।

---

* स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।
—गीता

वही धर्म, वहि कर्म, बल, वहि विद्या, वहि मन्त्र ।
जासों निज गौरव-सहित होय स्वदेस स्वतंत्र ॥ ९२ ॥

पराधीन और स्वाधीन

पराधीनु केहि कामकौ, जो सुर-पति-सम होय !
सतत सुखी स्वाधीनही, धनि, जगतीतल कोय ॥ ९३ ॥
जौ अधीन, तौ छाँड़ियै स्वर्गहुँ बिभव-बिलास ।
जौपै हम स्वाधीन, तौ भलो नरक कौ बास* ॥ ९४ ॥
पराधीन जौ जनु, नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु ।
पराधीन जौ जनु नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु ॥ ९५ ॥

स्वदेश-विद्रोह

भूलेहुँ कबहुँ न जाइये देस-विमुखजन पास ।
देस-विरोधी-संग तें भलो नरक कौ बास ॥ ९६ ॥
सुख सों करि लीजै सहन कोटिन कठिन कलेस ।
विधना, वै न मिलाइयौ, जे नासत निज देस ॥ ९७ ॥
सिव-विरंचि-हरिलोकहूँ, बिपत सुनावै रोय ।
पै स्वदेस-विद्रोहि कों सरनु न दैहै कोय ॥ ९८ ॥

* जौ न जुगुति पिय-मिलन की, धूरि मुकुति-मुँह दीन ।
जौ लहियै सँग सजन, तौ धरक नरकहूँ कीन ॥
—विहारी

व्यर्थ गर्व

अहे गरब कत करत तूँ खरब पाय अधिकार !
रहे न जग दसकंध-से दिग विजयी जुगचार ।। ९९ ।।
कनक-पुरी जब लंक-सी झुरी अछत दसकंध ।
तुव झोपरियाँ काँस की कौन पूछि हैं अंध ।। १०० ।।

चौथा शतक

मारुति-वन्दना

कनक-कोट-कंगूर जेहि किये धौरहर धूम।
सो भारत-आरति हरौ मारुति-लाँबी-लूम ॥ १ ॥
लाँबी लूम घुमायकैं कनक-कोट-चहुँओर।
करतु केलि किलकारि दै कपि केसरी-किसोर ॥ २ ॥

लंका-युद्ध

भिरे अनल-मुख कपिनु सों तम-मुख राकस-पुञ्ज।
भयौ युद्ध-थलु लंक कौ बिनुऋतु किंसुक-कुञ्ज ॥ ३ ॥
आवतु कज्जल-कूट-लौं प्रलय-रूप, सतसंध!
कुम्भकर्ण दसकंध कौ बिकट बंधु रण-अंध ॥ ४ ॥
भूलेहुँ याहि न जानियौ बृत्र-शत्रु-पबि-पात।
इन्द्रजीत! है यह वही मारुति-मुष्टि-अघात ॥ ५ ॥

मेघनाद महितल गिर्यौ सुनि मारुति-हुंकार ।
कहूँ तून, कहुँ धनु पर्यौ, कहुँ कृपान, कहुँ ढार* ॥ ६ ॥

रुक्मिणि-हरण

बरसावतु सर रिपुन पै रथतें रुकमिनि-रौन ।
मुख-प्रसेदु पोँछति प्रिया, करि अँचरा सोँ पौन ॥ ७ ॥
गहि मेरो करु रुकमिनी ! मति काँपै घबराय ।
दूँगो प्रतिपच्छीनु के पच्छनु काटि गिराय ॥ ८ ॥

अभिमन्यु

जइयौ चितवत चाव सोँ प्रिया उत्तरा-ओर ।
ना जानैँ, कब लौटिहौ, प्यारे पार्थ-किसोर ! ॥ ९ ॥
धन्य, उत्तरा-उर-धनी ! धन्य, सुभद्रा-नंद !
धनि भारत-भट-अग्रनी ! पार्थ-पयोनिधि-चंद ! ॥ १० ॥
धन्य, पार्थ-चख-चंद ! तूँ, धन्य, सुभद्रा-लाल !
सातहुँ महारथीनु सों कियौ युद्ध बिकराल ॥ ११ ॥
सातहुँ महारथीनु सँग संगर-जूझनहारु ।
ब्यूह-बिदारनु धनु-धनी, बलि-बलि, पार्थ-कुमारु ॥ १२ ॥

---

* कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल ।
कहुँ मुरली, कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट, बनमाल ॥
—बिहारी

भीम-भीमता

रहौ न केते पांडु-सुत बुधि-बल-बिक्रम-सीम ।
द्रौपदि-बेनी-बाँधिबो जानतु पै इक भीम ॥ १३ ॥
धर्मबीर अगनित रहौ, युद्धबीर बल-सीम ।
पै द्रौपदि-अपमान-हरु, भीमकर्म इक भीम ॥ १४ ॥

द्रौपदी-केश-कर्षण

कृष्णा-कच-कर्षण लखत, धिक, पारथ नतग्रीव !
धिक पौरुष, धिक बाहु-बल, धिक-धिक यह गांडीव ॥ १५ ॥
खैंचत खल तिय-पट, तऊ खैंचत नाहिँ कृपान ।
धर्मराज ! धिक धर्म अस, धिक धीरज, धिक ज्ञान ॥ १६ ॥
छाँड़ि, कहा कृष्णा-कचनु करषत माँड़ि उमाहु ।
करिहै केस-कृसानु यह कौरव-कानन-दाहु ॥ १७ ॥
धिक, दिल्ली हतभागिनी ! अजहुँ खरी बिनुलाज ।
कृष्णा-कच-कर्षण लखति, परी न तो सिर गाज ॥ १८ ॥
गई न धँसि पाताल तूँ, लखि द्रौपदि-पट-हीन ।
धिक, दिल्ली दुरभागिनी ! दिन-दिन दीन अधीन ॥ १९ ॥

चाणक्य

दियौ उलटि साम्राज्य तैं करि अशक्यहूँ शक्य ।
नीति-बीरता* में तुहीं कुशल एक चाणक्य ॥ २० ॥
राज-मुकुट नवनंद† के, चन्द्रगुप्त सुख-दैन !
लखि लुंठित तुव पगनु पै कबै सिरैहौं नैन ॥ २१ ॥

चंद्रगुप्त

जासु समर-हुंकार तें काँपतु विश्व विराट ।
सेल्यूकस‡-करि-केहरी जयतु गुप्त सम्राट ॥ २२ ॥

काका कन्ह

अरि-आँतनु को बाँधिकैं सुभग सीस पै पाग ।
अलग अलापतु अश्व पै कन्ह मत्त रण-राग ॥ २३ ॥

---

* नव नन्दन कों मूलसहित खौद्यो छन-भर में ।
चन्द्रगुप्त में श्री राखी, नलिनी जिमि सर में ॥
क्रोध प्रीति सों एक नासिकैं एक बसायौ ।
शत्रु मित्र कौ प्रगटि सबनु फलु लै दिखरायौ ॥

[मुद्राराक्षस]

† महाराज महानन्द और उनके आठ पुत्र ।

‡ सिकंदर आज़म का यह एक सेनापति था । इसने भारत के पूर्वीय प्रदेशों पर अधिकार करके ३०५ ई० पूर्व में सिन्धु नदी को पार किया । परन्तु चंद्रगुप्तने उसे खदेड़ दिया । दोनों में संधि हो गई । सेल्यूकस ५०० हाथी लेकर संतुष्ट हो गया और उसने अपनी कन्या चंद्रगुप्त को ब्याह दी और अपना दूत मेगास्थनीज़ भी चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा, जिसने तत्कालीन भारत का अपनी आँखों-देखा एक सुन्दर वृत्तान्त लिखा ।

अंतकहूँ के अंत-कर खड़ग-कामिनी-कंत ।
हैं कहँ काका कन्ह-से आजु सूर-सामन्त ॥ २४ ॥

कैमास

किते न उद्धत भूप किय, पृथीराज ! तुव दास ।
हनि ऐसो कैमास* अब तुव जीवनु कै मास ? ॥ २५ ॥

चामुंडराय

लियौ बाँधि चामुंडरै,† हन्यौ सुमति कैमास ।
संभरीस ! साम्राज्य की करत तऊ तैं आस ॥ २६ ॥

---

* यह पृथ्वीराज का एक विश्वासपात्र मंत्री था । दैववशात् महाराज की एक कर्नाटकी नाम की वेश्या से इसका प्रेम हो गया । रानी इच्छनकुमारीने महाराज को इस अनुचित संबंध का पता दे दिया । महाराजने स्वयं भी एक दिन मन्त्री को कर्नाटकी के साथ देख लिया और उसे अपने वाण का लक्ष्य कर मार डाला । कैमास की इस हत्या से सारे राज्य में असंतोष फैल गया । महाराज पृथ्वीराज ख़ुद अपने कार्य पर बहुत पछताये । कैमास की मृत्यु से उनका मानो एक हाथ ही कट गया । मंत्रि-वियोग के इस दारुण-दुख को पृथ्वीराज आमरण नहीं भूले ।

† पृथ्वीराज के पुत्र रेणुसिंह और चामुण्डराय में बड़ी मित्रता थी । चंद्रपुण्डीर इत्यादि सामंत मामा-भांजे की इस मैत्री पर जलते थे । वे चाहते थे , कि किसी तरह भी चामुण्डराय को नीचा दिखाना चाहिए । संयोगवश, एक दिन महाराज पृथ्वीराज का हाथी छूट गया । एक गली में चामुण्डराय और उसका सामना हो गया । हाथी चामुण्डराय पर झपटा । हटने को कहीं स्थान न था । इसलिए वीर सामंतने उसपर तलवार का ऐसा वार किया, कि उसकी सूँड़ कट गई और वह वहीं गिरकर मर गया । पृथ्वीराज को वह हाथी प्राणप्रिय था । उधर चामुण्डराय के विरुद्ध शिकायतें भी काफ़ी पहुँच चुकी थीं । महाराज यह सुनकर आग-बबूला हो गये, और चामुंडराय को गिरफ़तार करने के लिए गुरुराम और आजानुबाहु को भेजा । परन्तु स्वामिभक्त चामुंडरायने स्वयं ही अपने हाथों अपने पैरों में बेड़ी डाल लीं । चामुंडराय की गिरफ़तारी से ही पृथ्वीराज के अधःपतन का श्रीगणेश हुआ । शहाबुद्दीन ग़ोरी के कराल आक्रमण से साम्राज्य की रक्षा कराने के लिए पृथ्वीराज

उद्धत रिपु-आहुतिन सों पूरि युद्ध-मख-कुण्ड ।
चल्यौ समर तें स्वर्ग कों अमर राय चामुण्ड ॥ २७ ॥

लंगरिराय

है तेरी ही मूँछ, औ तेरी ही तरवार ।
तुहीं पैज-रखवार है, संयमराय*-कुमार ! ॥ २८ ॥
किन तुव मरनु सराहियै, संयमराय-कुमार !
जाहि शत्रु जयचंदहू दियौ अश्रु-उपहार ॥ २९ ॥
अहैं शूर-सामन्त तुव औरहुँ, संभरिराय !
पै दूजो नहिँ कन्ह, नहिँ दूजो लंगरिराय ॥ ३० ॥

कहरकंठीर और चंद्रपुंडीर

दुहूँ मत्त, जयचंद ! वै, दुहूँ बीर रण-धीर ।
यहाँ कहरकंठीर†, तौ वहाँ चंद्रपुंडीर‡ ॥ ३१ ॥

के बहनोई महाराणा समरसिंहने विलासमग्न चौहान-राज को जब बहुत-कुछ फटकारा और लज्जित किया, तब कहीं उनके कहने पर वीर-शिरोमणि चामुण्डराय की बेड़ियाँ काटी गयीं। एकमात्र वीर सामंत चामुंडराय जिस वीरता और साहस से मुहम्मद ग़ोरी से लड़ा, वह वर्णनातीत है।

* देखो टिप्पणी—पहला शतक; २५ दोहा ।

† कन्नौज के महाराज जयचंदने इसी वीर योद्धा को अपनी कन्या संयोगिता का वाग्दान किया था ।

‡ महाराज पृथिवीराज चौहान का एक प्रमुख सामंत ।

संयोगिता

पितु-पति-कुल-कूलनु अरे, दैहै बादि ढहाय।
कलह-धार संयोगिता-सरिता, संभरिराय ! ॥ ३२ ॥

पृथीराज ! करिहै कहा उर सयोगितै धारि।
अधरामिय-प्यासी न, वह सोनित-प्यासी नारि ॥ ३३ ॥

इत गोरी* गर लाय तूँ सोवत, संभरिराय !
भोगतु राज-सिरीहिँ तुव उत गोरी† गर लाय ॥ ३४ ॥

जयचंद

खोलि बिदेसिनु कों दियौ देस-द्वार, मतिमंद‡ !
स्वारथ-लगि कीनों कहा, अरे कुमति जयचंद ! ॥ ३५ ॥

स्वर्ग-देस लुटवाय, सठ ! कियौ कनक तें छार।
फूटबीज इत ब्वै गयौ जयचँद जाति-कुठार ! ॥ ३६ ॥

दियौ बिदेसिनु अरपि धन-धरती, धरम स्वछंद।
हमैं फूट अब देत तूँ, धिक, दानी जयचंद ! ॥ ३७ ॥

---

* महारानी संयोगिता।

† शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी।

‡ काहे तूँ चौका लगाये, जयचँदवा।
अपने स्वारथ भूलि लुभाये, काहे चोटीकटवा बुलाये, जयचँदवा ॥
अपने हाथ से अपने कुल कै काहे तैं जड़वा कटाये, जयचँदवा।
फूट के फल सब भारत बोये, बैरी कै राह खुलाये, जयचँदवा ॥
औरौं नासि तैं आपौ बिलाने, निज मुँह कजरी पुताये, जयचँदवा ॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आल्हा और ऊदल

आल्हा-ऊदल* ही सही, गही साँग तरवार ।
ज्यौं साँचे हथयार, त्यौं साँचे घालनहार ॥ ३८ ॥

कियौ समर-साको सही जूझि महोबावाल ।
उमँगि ओजु आवतु अजौं सुनि-सुनि अल्ह-हवाल ॥ ३९ ॥

नहिँ आल्हा-ऊदल रहे, नाहिँ मरद मलखान† ।
सुजसु-जुन्हाई पै अजौं करति जान्हवी-न्हान ॥ ४० ॥

गोरा और बादल

धनि, गोरा रण-साहसी ! धँसी साँग हिय-पार ।
बाँधि आँत, पुनि तेग लै, भयौ तुरँग-असवार ॥ ४१ ॥

बस, गोरा-रण-धीरता‡ लखियौ, पदुमिनि ! आज ।
रखिहै सीसु चढ़ाय वह तुव सुहाग की लाज ॥ ४२ ॥

---

* देखो टिप्पणी—तीसरा शतक; ७४ दोहा । आल्हा साँग और उसका भाई ऊदल तलवार बाँधा करता था । साँग बाँधनेवाला तो आल्हा के बाद कोई हुआ ही नहीं । इन दोनों वीर भ्राताओं ने बावन लड़ाइयों में भाग लिया और शत्रुओं को परास्त किया था ।

† देखो टिप्पणी—तीसरा शतक; ६९ दोहा ।

‡ फिरि आगे गोरा तब हाँका । खेलौं, करौं आजु रन-साका ॥
हौं कहिए धौलागिरि गोरा । टरौं न टारे, अंग न मोरा ॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं । मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं ॥
× × ×
गोरै साथ लीन्ह सब साथी । जस मैमंत सूंड़ बिनु हाथी ॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही । आवत आइ हाँक रन दीन्हीं ॥
× × ×

गोरा, तुव बद्लु बड़ो नीरसु, निपट कठोर।
बिदा होत हेर्यौ न जो प्रिया-लोयननु ओर ॥ ४३ ॥
कहतु कौन 'बद्ल' तुम्हैं, हौ तुम समर-समीर ॥
घेरत निजदल-बद्लै, रिपु-दल-बद्लु चीर ॥ ४४ ॥
अलादीन-दल दारिबे, बद्लु बीरु बलन्द।
मेरे मत, मेवाड़ में प्रगट्यौ पारथ-नन्द ॥ ४५ ॥

भई बगमेल, सेल घन घोरा। औ गज-पेल; अकेल सो गोरा ॥
सहज कुँवर सहसौ सत बाँधा। भार पहार जूझ कर काँधा ॥
लगे मरै गोरा के आगे। बाग न मोर घाव मुख लागे ॥
जैस पतङ्ग आगि धँसि लेई। एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
टूटहिं सीस, अधर धर मारै। लोटहिं कंधहिं कंध निरारै ॥
घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल ॥
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सों नहि मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन बिदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यों घोड़े टूटै असवारू ॥
लोटहिं सीस, कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥
× × ×
सबै कटक मिलि गोरहि छेका। गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ के मोछ हाथ को मेला ? ॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुए पाछ कोई घिसिआवा ॥
करै सिंघ मुख सौहहिं दीठी। जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी ॥
रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जौलगि रुहिर न धौवौं तौलगि होइ न रात ॥
[पदमावत]

पद्मिनी-जौहर

वह चितौर की पद्मिनी, किमि पैहौ, सुलतान* !
कब सिंहिनि-अधरानु कौ कियौ स्वान मधु-पान ? ॥ ४६ ॥

चंचरीक ! चित्तौर में नहिँ पैहै रस-जाल ।
ह्वैहै चंपक-माल-लौं तोहिँ पद्मिनी बाल ॥ ४७ ॥

भई भस्म जहँ पद्मिनी आरज-धर्म समोय ।
यज्ञ-अग्निहूँ तैं अधिक पावनु पावकु सोय ॥ ४८ ॥

जा दिन जौहर तैं जगी ज्वाल-माल अति चंड ।
जन-हीतल-सीतलकरन प्रगट्यौ जग श्रीखंड ॥ ४९ ॥

केहि कारन सेवतु सुरुचि नित नवीन समसानु ?
जहँ-तहँ जौहर की भसमु ढूँढ़तु संभु सुजानु ॥ ५० ॥

क्यों न धारियै सीस पै वह जौहरकी राख ।
भव-तनु-भूषन भसम तैं जो पुनीत गुन लाख ॥ ५१ ॥

लिखे न केते सुमृति में ब्रत-बिधान सबिबेक ।
पै जग-जाहिर जंग कौ ब्रत जौहर बस एक ॥ ५२ ॥

महाराणा साँगा

लसति जासु पबि-देह पै असी घाव की छाप ।
सो साँगा† निज साँग तैं दलै न काकौ दाप ॥ ५३ ॥

* अलाउद्दीन खिलजी से तात्पर्य है ।
† महाराणा संग्रामसिंह ।

हे राणा साँगा ! तुहीं रण में मरद मलाह।
किते न खाँड़े-घाट तैं दिय उतारि गुमराह ॥ ५४ ॥

जयमल और पत्ता

हे जयमल* राठौरही तुव सुपूत, चित्तौर !
भरत-भरत तुव घाव जो दिये प्राण तिहिँ ठौर ॥ ५५ ॥
पत्ता-लौं अकबर-अनी पत्ता† दई उड़ाय।
दिये फेरि चित्तौर पै प्राण-प्रसून चढ़ाय ॥ ५६ ॥
लाज आज मेवाड़ की, बस, तुम्हरेहीँ हाथ।
जयमल ! पत्ता ! फूल-लौं हँसि चढ़ाइयौ माथ ॥ ५७ ॥
जहँ जयमल, पत्ता वहीँ, एक प्राण द्वै देह।
भयौ अमरु मेवाड़ में, इन दोउनु कौ नेह ॥ ५८ ॥

महाराणा प्रताप

अणु-अणु पै मेवाड़ के छपी तिहारी छाप।
तेरे प्रखर प्रताप तें, राणा प्रबल प्रताप ! ॥ ५९ ॥
जगत जाहिं खोजत फिरै, सो स्वतंत्रता आप।
बिकल तोहिँ हेरति अजौं, राणा निठुर प्रताप ! ॥ ६० ॥

* वेदनौर-नरेश जयमल राठौर।

† चन्दावत कुल की जगवत शाखा में उत्पन्न हुआ प्रतापसिंह, जिसे लोग 'पत्ता' या 'पत्ते' कहा करते थे। यह कैलवाड़े का राजा था।

है, प्रताप! मेवाड़ में तुहीँ समर्थ सनाथ।
धनि-धनि, तेरे हाथ ए, धनि-धनि, तेरो माथ ॥ ६१ ॥
रजपूतनु की नाक तूँ, राणा प्रबल प्रताप!
है तेरी ही मूँछ की राजथान में छाप* ॥ ६२ ॥
काँटे-लौं कसकयो सदा को अकबर-उर माहिँ?
छाँड़ि प्रताप-प्रताप जग दूजो लखियतु नाहिँ ॥ ६३ ॥
ओ, प्रताप मेवाड़ के! यह कैसो तुव काम?
खात खलनु तुव खड्ग, पै होत काल कौ नाम ॥ ६४ ॥
उमँड़ि समुद्र-समुद्र-लौं ठिले आपु तें आपु।
करुण-वीररस-लौं मिले सक्ता† और प्रतापु ॥ ६५ ॥

---

* बूड्यौ राज-समाज, दिल्ली-यवन-समुद्र में।
आरज-गौरव-लाज, इक राखी परताप तुम ॥
अकबर परमप्रवीन, राजपूत दागिल किये।
इक मिवार दागी न, तुव प्रताप-बल कारनै ॥
छत्र-क्षेत्र निःछत्र, भयौ होत निहचय कवै।
जौ न धरत सिर छत्र, परम हठी परताप तूँ ॥
लै परताप उछङ्ग, जननी जन्म सुफल भयौ।
अकबर-काल-भुवङ्ग, कुचले फन जिन पग तरैं ॥

—राधाकृष्णदास

† महाराणा प्रतापसिंह के भ्राता शक्तिसिंहजी, जो घर की किसी अनबन के कारण दिल्ली में अकबर के अधीन होकर रहने लगे थे।

महाराणा राजसिंह

या औरँग-सिसुपाल तें रूपनगर की बाल* ।
हरि-ज्यौं धाय उधारियौ, राजसिंह नरपाल ! ॥ ६६ ॥

चूड़ावत का प्रेमोपहार

प्राण-प्रिया कौ सीसु लै, परमप्रेम-उपहारु ।
चल्यौ हुलसि रण-मत्त ह्वै चूड़ावत सरदारु ॥ ६७ ॥
पायौ प्रणय-प्रमाण में निज प्यारी-प्रियसीस ।
चूड़ावत ! उर धारि सो ह्वैहौ समर-गिरीस ॥ ६८ ॥

छत्रपति शिवाजी

किधौं रौद्ररस, रुद्र कै, किधौं ओज-अवतार ।
शाह-सुवन शिवराज ! तैं किधौं प्रलय साकार ॥ ६९ ॥
रखी तुहीँ सरजा शिवा ! दलित हिन्द की लाज ।
निरवलंब हिन्दून कों तूँहीं भयौ जहाज ॥ ७० ॥
यही रुद्र-अवतार है, यही सुभैरव-रूप ।
एही भीषण भीम है शिवा भौंसिला भूप ॥ ७१ ॥
औरँगहू तुव धाक तें भाजतु भामिनि-भौन ।
है लोहा तुव सँग, शिवा ! लेनहार फिरि कौन ? ॥ ७२ ॥

* प्रभावती ।

नित प्रति सेवा* खलनु कौ तोहि कलेवा देत ।
पेटु खलावत, काल ! तैं तऊ आय रण-खेत ॥ ७३ ॥

गरब करत कत बावरे, उमँगि उच्च गिरि-शृङ्ग !
यश-गौरव शिवराज कौ इत नभतें हुँ उतङ्ग ॥ ७४ ॥

'करकीं क्यों आपुहिँ चुरीं ?' कहति हरम अकुलाय ।
'सुन्यौ नाहिँ, आवतु शिवा समर-निसान बजाय ?' ॥ ७५ ॥

ह्वहौ विजयी विश्व में, अजित रायगढ़-राज !
गहि कृपान अरि काटिहौ, राखि हिन्द की लाज ॥ ७६ ॥

किते न तोपनु तें शिवा दृढ़ गढ़ दिये ढहाय ।
केते सुरँग लगायकैँ दिये न दुर्ग उड़ाय ॥ ७७ ॥

महाराजा छत्रसाल

छत्रसाल नृप ! नामु तुव मङ्गल-मोद-निधान ।
सुमिरि जाहि अजहूँ बनिक खोलत प्रात दुकान† ॥ ७८ ॥

चंपत को बच्चा तुहीं, है इक सच्चा शेर ।
जब्बर बब्बर-बंस के किये न केते जेर ॥ ७९ ॥

रैयत-हित हिय-दानु दिय, हथयारनु-हित हाथ ।
छत्रसाल, धनि ! कृष्ण-हित नैन, धर्म-हित माथ ॥ ८० ॥

* शिवाजी ।

† "छत्रसाल महाबली, करिहैं सब भली-भली ।"—ऐसा कहकर आज भी बुन्देलखंड में नित्य प्रातःकाल दूकानदार दूकान खोलते हैं ।

गहि कृपान-कुस नृप छता[*] दियौ तोहिँ नित दानु ।
तऊ कृतघ्नी काल ! तैं नहिँ मानत एहसानु ॥ ८१ ॥
ग्रसित ग्राह-अवरङ्ग-मुख खंडबुँदेल-गयन्द ।
उमँगि उधारयौ धाय, धनि, हरि-इव चंपत-नन्द ॥ ८२ ॥
धनि, छत्ता ! तुव खग्ग, धनि, रण-अडग्ग पबि-देह ।
बहु मूँछनवारेनु कों मरदि मिलायौ खेह ॥ ८३ ॥
नहिँ छत्ता ! परवाह कछु तोहिँ शाह के द्वार ।
है तूँ ब्रज-दरबार कौ ऐँड़दार सरदार[†] ॥ ८४ ॥

---

[*] 'छत्रसाल' का अपभ्रंश, जिसे तत्कालीन कवियोंने ही नहीं, महाराज ने स्वयम् भी अपनी कविता में प्रयुक्त किया है ।

[†] सम्वत् १७६२ में बादशाह बहादुरशाहने महाराज छत्रसाल को अपना 'मंसबदार' बनाना चाहा, पर उन्होंने यह पद स्वीकार नहीं किया । बोले—कौन किसका मंसबदार होता है ? जिसका नाम विश्वम्भर है, जिसका बांका विरद है, उसी प्रभु के हम मंसबदार हैं—

मनसबदार होई को काकौ । नाम विसुम्भर सुनि जग बाँकौ ॥

(छत्रप्रकाश)

महाराजने इस प्रसङ्ग पर स्वयम् यह कवित्त रचा है—

जाकौ मानि हुकुम सुभानु तम-नासु करै,
चन्द्रमा प्रकासु करै नखत दराज कौ ।
कहै छत्रसाल, राज-राज है भँडारी जासु,
जाकी कृपा-कोर राज राजै सुर-राज कौ ॥
जुग्म कर जोरि-जोरि हाजिर त्रिदेव रहैं,
देव परिचार गहैं जाके गृह-काज कौ ।
नरकी उदारता में कौन है सुधार, मैं तौ
मनसबदार सरदार ब्रज-राज कौ ॥

(छत्रसाल-ग्रन्थावली)

छत्रसालनृप-धाक तेँ बड़े-बड़े थहरायँ ।
कहुँ 'छकार' के सुनत हीँ छूटि न छक्के जायँ ॥ ८५ ॥
असि-भुवंगिनी-अंगना-संग, समर-संयोग ।
भोगैँ भुज-भुजगेन्द्र तो, छता ! छत्रपति-भोग ॥ ८६ ॥
कहूँ बिपत, कहुँ भयौ तूँ संपत, चंपत-लाल !
दुष्टनु-हित करबाल भो, अरु इष्टनु-हित ढाल ॥ ८७ ॥
चंपत* ! खंडबुँदेल की तैँ पत राखनहारु ।
डूबत हम हिन्दून कों तुव कुमारु कनधारु ॥ ८८ ॥

गुरु तेग़बहादुर

तेगबहादुर जो किया, किया कौन मुरशीद ?
सर दीना, सार न दिया†, साँचा अमर शहीद ॥ ८९ ॥

गुरु गोविन्दसिंह

जय अकाल-आनन्द-भव नव मकरन्द-मलिन्द ।
शक्ति-साधना-सिद्धवर, असि-धर गुरुगोविन्द ॥ ९० ॥

---

* प्रलय-पयोधि-उमंड में ज्यों गोकुल जदुराय ।
त्यों बूड़त बुन्देल-कुल राख्यौ चंपतराय ॥
(छत्रप्रकाश)

† बाँह जिन्हादी पकड़िए, सिर दीजिए बाँह न छोड़िए ।
गुरु तेगबहादुर बोलिया, धर पइये धर्म न छोड़िए ॥

पराधीनता-सिंधु मधि डूबत हिन्दू हिन्द ।
तेरे कर पतवार अब, पतधर गुरुगोविन्द ॥ ९१ ॥
धर्म-धुरन्धर, कर्म-धर, बल-धर, बखत-बलन्द ।
जयतु धनुर्धर, तेग़-धर, तेगबहादुर-नन्द ॥ ९२ ॥
असि-ब्रत धार्यौ धर्म पै, उमँगि उधार्यौ हिन्द ।
किये सिक्ख तेँ सिंह सब, धनि-धनि गुरुगोविन्द ॥ ९३ ॥
दसवेँ गुरु के राज में रही हिन्द-पत-लाज ।
औरँगशाही पै गिरी वाहगुरू की गाज ॥ ९४ ॥
रहती कहँ हिन्दून की आन बान अरु शान ।
ढाल न होती आनि जो गुरुगोविन्द-कृपान ॥ ९५ ॥
संघ-शक्ति-ब्रत-मित्र, कै बृषगत बिप्लव-मित्र ।
कै पवित्र बलि-चित्र-पट गुरुगोविन्द-चरित्र ॥ ९६ ॥
दिखी न दूजी जाति कहुँ, सिक्खन-सी मजबूत ।
तेगबहादुर-सो पिता, गुरुगोविंद-सो पूत ॥ ९७ ॥

सिंह-शावक-बलिदान

"माथ रहौ वा ना रहौ, तजैँ न सत्य अकाल ।"
कहत-कहत ही चुनि गये, धनि, गुरुगोविंद-लाल* ॥ ९८ ॥

* जोरावरसिंह और फ़तहसिंह, जो क्रमशः नौ और सात वर्ष के थे ।

भाई बंदा

मति सोवै सुख-नींद तूँ, अब, सूबा सरहिन्द* !
गाजत बंदा सीस पै पठयौ गुरु गोविन्द ॥ ६६ ॥
करि गुरू गोविँद-बँदगी बंदा बीर महान ।
ककरी-लौं काटे किते मरद मारि मैदान ॥ १०० ॥

*इसीने गुरुगोविन्दसिंह के दोनों कुमार जोरावरसिंह और फ़तहसिंह को शहर-पनाह की दीवार में ज़िन्दा चुनवा दिया था ।

पाँचवाँ शतक

शिव-बन्दना

दलौ त्रिशूल त्रिशूल-धर ! त्रिभुवन-प्रलयंकारि।
हर, त्र्यम्बक, त्रैलोक्य-पर, त्रिदश-ईश, त्रिपुरारि ॥ १ ॥

दुर्गादास राठौर

तूँ अठौर* राठौर-कुल, भयौ ठसक की ठौर।
दुर्जय दुर्गादास ! धनि, धीर-वीर-सिरमौर ॥ २ ॥

धनि, दुर्गा राठौर ! तूँ दल्यौ मुगल-दल-दाप।
लखियतु मरुथल पै अजौं, तुव निज न्यारी छाप ॥ ३ ॥

ठौर-ठौर ठुकराय अरि, धनि, दुर्गा राठौर !
राखी ठुकराई-ठसक, मारवाड़-सिरमौर ! ॥ ४ ॥

---

* बादशाह औरङ्ग़ज़ेबने जब जोधपुर-नरेश महाराज यशवन्तसिंह को धोके से मरवा डाला और उनकी रानी एवं नवजात बालक अजितसिंह का कोई रक्षक न रहा, तब वीरवर दुर्गादास राठौरने ही अपने बाहु-बल से राठौर-वंश की मान-मर्यादा अक्षुण्ण रखी थी।

धुरमंगद

साहस-सो साहस कियौ धुरमङ्गद* सतसंध ।
कूदि जरति हथिसार में दिये काटि गज-बंध ।। ५ ।।
बिकट बाँक बानैत, त्यौं उद्भट निपट निसाँक ।
धुरमङ्गद की धाँक धौं हनूमान की हाँक† ।। ६ ।।

लोकमान्य तिलक

ब्रह्मनिष्ठता व्यास की, जामदग्न्य कौ ओज ।
दीपत इन दोऊन तें तिलक-सुनैन-सरोज ।। ७ ।।
जाहि भूलि भटकत फिरे हम कुरंग बन भूरि ।
धन्य तिलक ! बोधत करी जन्मजात कस्तूरि‡ ।। ८ ।।

---

* यह ओरछा (बुन्देलखण्ड) राज्यान्तर्गत 'पलेरा' जागीर के स्वामी थे । यह भारी वीर और साहसी थे । एक बार दिल्ली में, जब कि यह ओरछा-नरेश के साथ वहां थे, बादशाह की हथिसार में आग लग गई । हाथी जलने-भुनने लगे । किसकी हिम्मत, जो जलती हुई आग में कूदकर उनके बंधन काटे ? राव धुरमंगद से कहा गया कि, सिवा आप के कोई यह दुस्साहस का काम नहीं कर सकता । सुनते ही आप हथिसार में कूद पड़े और बावन हाथियों के बन्धन अदम्य साहस के साथ काट डाले ! सुकवि लछीरामने इनकी वीरता पर कहा है—

†बाँके गढ़-कोटन में, तोपन की चोटन में,
गोलन की ओटन में बिकट अटान की ।
पोर-पोर पट्टन में, बाँक की झपट्टन में,
ज्वानन के ठट्टन में कट्टन है प्रान की ॥
'लछीराम' लक्खत, बुँदेला अलफक्कड़ है,
अक्खड़ कहाँलौं कहौं अकह कहान की ।
बाक बाक बानीजू की, ताक सीताराम जू की,
धाँक धुरमंगद की, हाँक हनुमान की ।।

‡ अर्थात, 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है ।'

बाल तिलकही में लख्यौ बोध-बिकास अबाध ।
कारागारहुंतेँ कियौ प्रगट रहस्य अगाध ॥ ९ ॥
भावनु भारत-भाल कौ तिलक, तिलकहीँ एक ।
व्यक्त भयौ जातेँ सदा शक्ति-भक्ति-उद्रेक ॥ १० ॥

देशबन्धु दास

देसबन्धु ! या सत्य कौ तुमहीं दियौ प्रमान ।
दीनबन्धुही सों मिलतु दीनबन्धु भगवान ॥ ११ ॥
'भयौ दास बिनुगेह तूँ'—कहतु बावरो कौन ?
किते न निज बन्धून के किये हिये निज भौन ॥ १२ ॥
किते अँधेरे दृगनु कों दियौ न ओज-प्रकास ।
कासु न चित-रंजन कियौ तुम, चितरंजन दास ! ॥ १३ ॥
पुलकि असीसत नहिँ किते लहि मुहँमाँगे दान ।
देसबन्धु-बलि-पौरि पै नित दरिद्र-भगवान ॥ १४ ॥

आर्य-देवियाँ

अपनेही बल आपनी रखनहारियाँ लाज ।
धनि, आरज-कुल-नारियाँ, जग-नारिनु-सिरताज ॥ १५ ॥
जुग-जुग अकह-कहानियाँ कहिहै कवि-कुल-गाय ।
धनि, भारत-भट-नारियाँ, रह्यौ सुजसु चहुँ छाय ॥ १६ ॥

कर्मादेवी

कुतुबुदीन-गज-गंजिनी, गहन-गर्जिनी कोय ।
जय कर्मा रण-सिंहिनी, गृह-गृह जनमौ सोय ॥ १७ ॥

वीरा

धारि पीउ-भुज-माल तब बिलस्यौ नेह रसाल ।
अब हौं बीरा* धारिहौं समर शत्रु-सिर-माल ॥ १८ ॥
हम तौ छत्राणी कहैं, कहौ कोउ बिगरैल ।
पत राखी मेवाड़ की वाही महल-रखैल ॥ १९ ॥

पन्ना धाय

निज प्रिय लाल कटाय जो प्रभु-सिसु† लियौ बचाय ।
क्यों न होय मेवाड़ में पूजित पन्ना धाय ॥ २० ॥

दुर्गावती

धन्य सती दुर्गावती,‡ करि गढ़मंडल राज ।
रखी गोँड़वानैँ तुहीँ खड़ग-धर्म की लाज ॥ २१ ॥

---

* मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह की उपपत्नी, जिसने विलास-मग्न महाराणा को अकबर के क़ैद से छुड़ाकर अपने बाहु-बल और अद्भुत पराक्रम से मुग़ल-सेना को परास्त किया था ।

† महाराणा साँगा का छोटा पुत्र उदयसिंह, जिसे पन्ना नाम की धायने पृथ्वीराज के दासी-पुत्र बनवीर की तलवार से अपने पुत्र को कटाकर बचा लिया था ।

‡ यह महोबे के चन्देल राजा की पुत्री और गढ़मँडले के गोंड़ राजा दलपति की रानी थी । दलपति के स्वर्गवासी होते ही अकबर के हुक्म से उज्जैन के नवाब आसफ़ने गढ़मँडले पर चढ़ाई कर दी । महारानी दुर्गावतीने बड़ी वीरता से नवाब के साथ युद्ध किया और मुग़ल-सेना को परास्तकर भगा दिया ।

बज्र-कवच तनु, कंध धनु, कर कृपाण, कटि ढाल ।
गढ़मंडल-दुर्गावती रण-दुर्गा बिकराल ॥ २२ ॥
मत्त मुगल-दल दलमल्यौ, गढ़मंडल रण ठानि ।
धनि, दुर्गा दुर्गावती ! रखी तुहीं कुल-कानि ॥ २३ ॥

चाँदबीबी

मुगलनु पै झपटी मनों रणसिंहिनि तजि माँद ।
अकबर-मद-मर्द्दनु कियो, धनि, सुलताना चाँद ॥ २४ ॥

नीलदेवी

या कटारि सुकुमारि कौ प्रथम चूमि मुख, खान !
तब नीला*-अधरानु कौ मधु-रसु कीजौ पान ॥ २५ ॥

कविवर लाला भगवानदीनजीने अपनो 'वीर क्षत्राणी' में दुर्गावती के मुख से क्या ही ओजस्वी शब्द कहलाये हैं। देखिए—

"छत्रानी हूँ बिन मारे मरे भूमि न दूँगी ।
दम रहते न रण-भूमि से पग पीछे धरूँगी ॥
मानोगे मेरी बात तो कुछ मैं भी करूँगी ।
अन्याय करोगे तो विकट रूप धरूँगी ॥
चंदेल की बेटी नहीं तलवार से डरती ।
मँडला की महारानी नहीं रण से पछरती ।"

* यह पंजाब के नूरपुर नामक एक छोटे राज्य के स्वामी सूरजदेव की वीरपत्नी थीं। एक बार सिपहसालार अबदुश्शरीफ़ख़ाँ सूरने सूरजदेव और उसके पुत्र सोमदेव को गिरफ़ार कर लिया और परमसुन्दरी नीला पर काम-मोहित हो उसके साथ बलात्कार करना चाहा। नीलादेवीने शरीफ़ख़ाँ को ख़ूब शराब पिला दी और आप भाव-भङ्गी दिखाती हुई गाने लगीं। जब शरीफ़ख़ाँ मदोन्मत्त हो गया, तब उसकी छाती पर सवार होकर कटार से उसका काम तमाम कर डाला।

बोलि, चूमिहै फिरि कबों अधर सिंहिनी-केर ।
शठ ! क्षत्राणी सों कबौं कहिहै 'जानी' फेर ॥ २६ ॥
प्रथम कटारि-कपोल कौ लहि चुंबनु सरसाय* ।
तब नीला-अधरानु कौं मधु पीजौ उर लाय ॥ २७ ॥
यह कटारि-प्याली भरी रुधिर-मद्य सों तोर ।
लै निज जानी-हाथ सोँ, खान श्वान बरजोर ! ॥ २८ ॥
लंपट ! भेंटन चहत तूँ जिन भुजान तेँ धाय ।
क्यों न उखारौं, शठ ! तिन्हैं धरि तुव छाती पाय ॥ २९ ॥

लक्ष्मीबाई

तजि कमलासनु कर-कमलु, गहि तुरंग तरवार ।
कुल-कमला* काली भई, झाँसी-दुरग-दुआर ॥ ३० ॥
हौँ देख्यौ अचरजु अबै, झाँसी-दुरग अपार ।
दृग-कमलनि अंगार, त्यौँ कर-कमलनि तरवार ॥ ३१ ॥

---

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने इस ऐतिहासिक वीर-घटना पर 'नील देवी' नाम का एक सुन्दर गीति-रूपक और कविवर लाला भगवानदीनने एक ओजमयी कविता लिखी है । लालाजी का एक पद्य देखिए—

खींचि कटारी निज चोली से, झपटि शरीफहि दिया पछार ।
सब के देखत आनन्-फानन् छाती में धँसि गई कटार ॥
छाती फाड़ रक्त से रंजित मुख में दिया कटारहिं डाल ।
बोली, इसका बोसा लेकर ले मन का अरमान निकाल ॥
[वीर क्षत्राणी]

* महारानी लक्ष्मीबाई

भई प्रगटि रण-कालिका गढ़झाँसी परतच्छ ।
सुभट सँहारे लच्छमी, लच्छ-लच्छ करि लच्छ ॥ ३२ ॥
जय झाँसी-गढ़ लच्छमी, राजति त्रिबिध अनूप ।
गति चपला, दुति चंद्रिका, समर चंडिका-रूप ॥ ३३ ॥

सिंह-बधू

प्रेमालिंगनु काल सों करिहै सो ततकाल ।
व्याघ्र-बधू के कंठ जो गेरैगो भुज-माल ॥ ३४ ॥
थर थर क्यों काँपत, अरे भेंटन में अब मीच ।
सिंह-प्रिया कों लायहै कबहुँ फेरि उर नीच ? ॥ ३५ ॥
ह्वैहै छार म्लेच्छ ! तैं छ्वै छत्रानी-अंग ।
रमिहै सिंह-किसोर ही सिंह-किसोरी-संग ॥ ३६ ॥

सतीत्व-रक्षा

चाहै जो खल करन तुव, भगिनि ! सती-ब्रत-भंग ।
ता हिय हूलि कटारि यह, रँगियौ हाथ सुरंग ॥ ३७ ॥

सती-प्रताप

पतनी की पत पालिबे इन्द्रजीत-मृतमाथ ।
हँस्यौ हहरि, "ममप्रिया कौ परखौ सत, रघुनाथ!" ॥ ३८ ॥

दृढ़ता

तजिहैं मरद न मेंड़ निज, रहैं बकत बदराह।
करत न कूकर-बृन्द की कछु गयन्द परवाह ॥ ३९ ॥
शूर न चूकत दाँव निज, कूर बजावत गाल।
दीनों चक्र चलाय हरि, रह्यौ बकत शिशुपाल ॥ ४० ॥
नहिँ यामें अचरजु कछू, नाहिँन नीति-अनीति।
हँसत सदा खल सुजन पै, नई न कछु यह रीति ॥ ४१ ॥

शिकारी

लुकि-छिपि छरछंदनि, अरे, खेलत कहा शिकार !
जियत बाघ की पीठि पै क्यों न होत असवार ? ॥ ४२ ॥
लुकि-छिपि मारत, नामरद ! पशु-पंछिनु चहुँफेर।
पकरि पूँछि ललकारिकैँ क्यों न जगावत शेर ? ॥ ४३ ॥
अहे अहेरी ! यह कहा, कादर करत अहेर !
क्यौँ न लपकि ललकारि तूँ पकरि पछारत शेर ? ॥ ४४ ॥
नैक जीभ के स्वादुलगि दीन मीन मृग मारि।
नाम लजावत सिंह-स्यों, इमि कायरता धारि ॥ ४५ ॥
लुकि-छिपि बैठि मचान पै करत मृगनु पै वार।
जियत सिंह की मूँछ कौ क्यौँ न उखारत बार ? ॥ ४६ ॥

बनत बहादुर बादिहाँ दीन मीन मृग मारि।
क्यों न भरत*-लौं बाघ के गिनत दाँत मुख फारि ॥ ४७ ॥
हम बिनुपछ पच्छीनु पै कहा उठावत हाथ!
अब के आखेटक, अहो! भये तुमहुँ, जगनाथ! ॥ ४८ ॥
ताकत लंपट तीय तन, धरें धनुष पै हाथ।
कहूँ आजुलौं है सुन्यौ मसक मरुत कौ साथ ॥ ४९ ॥
सहत व्यर्थ, बिषयी! यहाँ कानन ताप निदाघ।
बारबाल बैठाय सँग कहा मारिहै बाघ ॥ ५० ॥

वीरता और सुकुमारता

बस, काढ़ौ मति म्यान तें यह तीछन तरवार।
जानत नहिँ, ठाढ़े यहाँ रसिक छैल सुकुवाँर ॥ ५१ ॥
बादि दिखावत खोलि तूँ तुपक तीर तरवार।
सुरमा मीसी के यहाँ बसत बिसाहनहार ॥ ५२ ॥
कवच्च कहा ए धारिहैं लचकीले मृदुगात।
सुमनहार के भार जे तीन-तीन बल खात ॥ ५३ ॥
कै चढ़िलै असि-धार पै, कै बनिलै सुकुवाँर।
द्वै तुरंग पै एकसँग भयौ कौन असवार? ॥ ५४ ॥

* शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न महाराज दुष्यन्त का पुत्र।

किमि कोमल अँग ओढ़िहैँ असहनीय असि-घाय ।
जिन पै गहब गुलाब की गड़ि खरोट परि जाय ।। ५५ ।।
पोँछि-पोँछि राख्यौ जिन्हैँ नित रमाय रस-रंग ।
समर-घाव ते ओढ़िहैँ किमि किसलय-से अंग ।। ५६ ।।
क्योंकरि डाइन डाकिनी कड़कड़ हाड़ चबाति ?
इत तौ झिली अँगूर की ओँठनु गड़ि-गड़ि जाति ।। ५७ ।।
जहँ गुलाबहूँ गात पै गड़ि छाले करि देत ।
बलिहारी ! बखतरनु के तहाँ नाम तुम लेत ।। ५८ ।।
"झझकत हियैँ गुलाब कैँ झँवा झँवैयत पाइ* ।"
या बिधि इत सुकुवाँरता अब न, दई सरसाइ ।। ५९ ।।
जाव भलैँ जरि, जरति जो उरध उसाँसनि देह† ।
चिरजीवौ तनु, रमतु जो प्रलय-अनलु कै गेह ।। ६० ।।

---

* छालै परिबे कैं डरनु सकै न हाथ छुवाइ ।
झझकत हियैं गुलाब कैं झँवा झँवैयत पाइ ।।

—बिहारी

† आड़े दै आले बसन, जाड़ेहूँ की राति ।
साहसु कै-कै नेह-बस, सखी सबै ढिग जाति ।।
नित संसौ हंसौ बचतु, मनौ सुइहिँ अनुमानु ।
बिरह-अगिनि-लपटनु सकतु झपटि न मीचु-सचानु ।।
सुनत पथिक-मुहँ माह-निसि, लुएँ चलति उहिँ गाम ।
बिनु बूझैं बिनुहीं सुनैं, जियति बिचारी बाम ।।

—बिहारी

होउ गलित वह अंग, जेहिँ लागति कुसुम-खरोट* ।
चिरजीवौ तनु, सहतु जो पुलकि-पुलकि पबि-चोट ॥ ६१ ॥
राज-ताज कौ भार क्यों सधिहै सिर सुकुवाँर ।
डगकु डगत-से चलत जो निज तनुहीँ के भार ॥ ६२ ॥

वीरता और विलासिता

तिय-पाइल- खही तुम्हैँ किय घाइल, रति-पाल ! ।
सुनि धुकार धौँसानु की ह्वैहै कौन हवाल ॥ ६३ ॥
जिनकौ-जिय-गाहक बन्यौ अँग-दाहक रति-नाह ।
असि-बाहक क्योंकरि बहै ह्वैहैँ सहित उमाह ॥ ६४ ॥
कहा भयौ इक दुर्ग जो ढायौ रिपु रणधीर ।
तुम तौ मानिनि-मान-गढ़ नित ढाहत, रति-बीर ! ॥ ६५ ॥

कवित्त

ससिमुखी सूखि गई तब तें व्याकुल भई, बालमु बिदेसहुँ कों चलिबो जबै कयो
दूध दही श्रीफल रुपैया धरि थारी माहिँ, माता सुत-भाल जबै रोरि कै टीको दयो ॥
ताँदुर बिसरि गयो, बधू सों कह्यौ, लै आउ, तन तें पसीना छुट्यौ मन तन कों तयो ।
ताँदुर लै आई तिया, आँगन में ठाढ़ी रही, करके पसारिबे में भात हाथ में भयौ ॥
—ग्वाल

मैं बरजी कै बार तूँ, इत कित लेति करौट ।
पँखुरी लगैं गुलाब की परिहै गात खरौट ॥
—बिहारी

ऐहैं, कहु, केहि काम ए कादर काम-अधीर ।
तिय-मृग-ईछनहीँ जिन्हैँ हैँ अति तीछन तीर* ।। ६६ ।।
छिन देखत मुख आरसी, छिन साजत सिंगार ।
कहा कटैहैँ सीसु ए बने-ठने सरदार ।। ६७ ।।
अंत न ऐहैं काम ए रसिक छैल सरदार ।
रहि जैहैँ दरपनु लियेँ सजत साज-सिंगार ।। ६८ ।।
त्यागि सकत नहिँ नैक जे चटक-मटक की शान ।
कहा छाँड़िहैँ युद्ध मेँ ते अजान प्रिय प्रान ।। ६९ ।।
चटक-मटकही तेँ तुम्हैँ नाहिँ नैक अवकास ।
अवसर पै करिहै कहा तुम बिलासिता-दास ? ।। ७० ।।
सुमन-सेज सँग बाल तुम पौढ़े करि सिंगार ।
को भीषम-सर-सेज की अब पत-राखनहार ।। ७१ ।।
उत गढ़-फाटक तोरि रिपु दीनी लूट मचाय ।
इत लंपट ! पट तानि तैँ परयौ तीय उर लाय ।। ७२ ।।
उत लूटत रिपु राज, इत दोउ मत्त रति-माहिँ ।
उन गर नाहीँ नहिँ छुटै, इन गर बाहीँ नाहिँ ।। ७३ ।।

---

* लागत कुटिल कटाच्छ-सर, क्यों न होहिं बेहाल ।
कढ़त जिहियहिं दुसाल करि तऊ रहत नटसाल ।।

—बिहारी

मान छुट्यौ, धन-जन छुट्यौ, छुट्यौ राजहूँ आज ।
पै मद-प्याली नहिँ छुटी, बलि, बिलासि-सिरताज ! ॥ ७४ ॥

आवतु आपु बिनासु तहँ, जहँ बिलसतु सुबिलासु ।
एक प्राण द्वै देह मनु उभय बिलासु बिनासु ॥ ७५ ॥

जित बिनासु आवन चहतु, पठवतु प्रथम बिलासु ।
मति बिलासु मुहँ लाइयौ, ऐहै नतरु बिनासु ॥ ७६ ॥

नयन-बानहीँ बान अब, भ्रुवही बंक कमान ।
समर केलि बिपरीतहीँ मानत आजु प्रमान ॥ ७७ ॥

निदरि प्रलय बाढ़त जहाँ बिप्लव-बाढ़-बिलास ।
टापतही रहि जात तहँ टीम-टाम के दास ॥ ७८ ॥

कवि-पतन

बरषत बिषम अँगार चहुँ, भयौ छार बर बाग ।
कवि-कोकिल कुहकत तऊ नव दंपति-रति-राग ॥ ७९ ॥

सुख-संपति सब लुटि गयौ, भयौ देस-उर घाय ।
कंकण-किंकिणि की अजौं सुनत झनक कविराय ! ॥ ८० ॥

रही जाति जठरागि तें भभरि भाजि अकुलाय ।
तुहैं परी अभिसार की अजहुँ हाय, कवि-राय ! ॥ ८१ ॥

तिय-कटि-कृसता कौ कविनु नित बखानु नव कीन ।
वह तौ छीन भई नहीं, पै इनकी मति छीन ॥ ८२ ॥

कहत अकथ* कटि छीन, कै कनक-कूट कुच पीन ।
छीन-पीन के बीच वै भये आजु मति-हीन ॥ ८३ ॥
नीति-बिहूनो राज ज्यौं, सिसु ऊनो बिनु प्यार ।
त्यौं अब कुच-कटि-कवित बिनु सूनो कवि-दरबार ॥ ८४ ॥
जागत-सोवत, स्वप्नहूँ, चलत-फिरत दिन-रैन ।
कटि-कुच पै लागे रहैं इन कवीनु के नैन ॥ ८५ ॥
आज-कालि के नौल कवि सुठि सुंदर सुकुवाँर ।
बूढ़े भूषण पै करैं किमि कटाच्छ-मृदु-वार ॥ ८६ ॥
वारमुखी में वार अब, युवति-मान में मान ।
रँग अबीर में बीर त्यौं कहियतु कोस-प्रमान ॥ ८७ ॥
कमल-हार, झीने बसन, ललित बेनु अब छाँड़ि ।
मौलि-माल, बज्जर कवच, तुमुल-शंख कवि,माँड़ि ॥ ८८ ॥
तजि अजहूँ अभिसारिका, रतिगुप्तादिक, मन्द !
भजि भद्रा, जयदा सदा शक्ति, छाँड़ि जग-द्वन्द ॥ ८९ ॥
करत किधौं उपहासु, कै ठकुरसुहाती आज ।
कहा जानि या भीरु कों कहत भीम, कविराज ॥ ९० ॥

---

* बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति कियें नीठि ठहराइ ।
सूछम कटि परब्रह्म-लौं अलख, लखी नहिँ जाइ ॥

—बिहारी

अब नख-सिख-सिङ्गार में, कवि-जन ! कछु रस नाहिँ ।
जूठन चाटत तुम तऊ मिलि कूकर-कुल माहिँ ॥ ९१ ॥
मरदाने के कवित ए कहिहैं क्यों मति-मन्द ।
बैठि जनाने पढ़त जे नित नख-सिख के छंद ॥ ९२ ॥

व्यर्थ चेष्टा

काहिँ सुनावत बीररसु, बृथा करत चित खेद ।
हैं ए रसिक सिँगार के, सुनत नायिका-भेद ॥ ९३ ॥
कहा बकत इत मूढ़ ! तूँ, क्यों न रहत गहि मौन ।
सुनिहै सरस समाज में निरस युद्ध-रसु कौन ? ॥ ९४ ॥

अनहोनी

बँधवाये सुत सिंह के बिनु रद-नख करवाय ।
सस-सृगाल-हाथनि, अहो ! भलो नाथ, यह न्याय ॥ ९५ ॥
चूमत चरण सियार के गज-मद-मर्द्दन शेर ।
झपटत बाजनु पै लवा, अहो ! दिननु के फेर ॥ ९६ ॥
दई ! दिननु के फेर तें भई औरहीँ साज ।
हुते सिलहखाने जहाँ, तहँ मयखाने आज ॥ ९७ ॥
भली, नाथ, लीला रची ! भलो अलाप्यौ राग !
नर ओढ़ी सिर ओढ़नी, नारिन बाँधी पाग ॥ ९८ ॥

भारत-पताका

जाहिँ देखि फहरत गगन गये काँपि जग-राज ।
सो भारत की जय-ध्वजा परी धरातल आज ॥ ९९ ॥
रवि-रथांग सों झगरि जो खेलति ही फहराय ।
वह भारत की जय-ध्वजा लुठित भूमि पै हाय ॥ १०० ॥

छठा शतक

नाद-वन्दना

सहस-फनी-फुङ्कार औ काली-असि-झङ्कार ।
बन्दों हनु-हुङ्कार, त्यौं राघव-धनु-टङ्कार ॥ १ ॥

वे और ये

जिनकी आँखन तें रहे बरसत ओज-अँगार ।
तिनके वंशज झेंप तें दृग झाँपत सुकुवाँर ॥ २ ॥
रहे रँगत रिपु-रुधिर सों समर केश निरवारि ।
तिनके कुल अब हीजरे काढ़त माँग सँवारि ॥ ३ ॥
धारत हे रण-भूमि जे रिपु-मुंडनु कौ हारु ।
तिनके कुलके करत ए आजु सुमन-सिंगारु ॥ ४ ॥
रह्यो सदा जिन हाथ कौ यार एक हथयार ।
लखियतु ललना-हेतु अब तिन हाथनु हित-हार ॥ ५ ॥
झूमत हे जहँ मत्त ह्वै सहजशूर दिन-रैन ।
लटकि लजीले छैल तहँ मटकि नचावत नैन ॥ ६ ॥

कितना भारी अन्तर !

मरत पूत उत दूध बिनु, बिलपत बिकल किसान ।
इत बैठ्यौ, शठ ! करत तैं सँग कामिनि मद-पान ॥ ७ ॥
बृष-रबि-आतप-तपि कृषक मरत कलपि बिनु नीर ।
इत लेपत तुम अरगजै, बिरमि उसीर-कुटीर ॥ ८ ॥
उत हाकिम रैयत-रकत करत पान उर चीर ।
इत पीवत तैं मद, अरे नृपति मनोज-अधीर ! ॥ ९ ॥
उत आतप अरु तपत भू, इत उसीर घनसार ।
रैयत राजा में, कहौ, ह्वैहै किमि सहकार ॥ १० ॥
उत भूखे क्रंदन करत कलपि किसान मजूर ।
इत मसनद पै मद-छके सुनत अलाप हुजूर ॥ ११ ॥

निर्जीव राजपूत

दलित सीस पै बाँधिकैं रजपूती की पाग ।
करत, निलज ! नट-लौं अजौं बल-बिक्रम कौ स्वाँग ॥ १२ ॥
तुम रजपूतनु तें कहा रजपूती की आस ?
प्रमदा-मदिरा-माँस के भये आजु तुम दास ॥ १३ ॥
कुल में दाग लगाय, धिक ! बन्यौ फिरत रजपूत ।
गरि-गरि गिर्यौ न गर्भ तें कादर, क्लीब, कुपूत ! ॥ १४ ॥

मजबूती तौ कहुँ नहीं, है सब काम निकाम।
कहिबे कों बस रहि गयौ रजपूती कौ नाम॥ १५॥
लखि जिनके मजबूत भुज काँपत हे यम-दूत।
या भारत में अब कहाँ वै बाँके रजपूत॥ १६॥
कहा तुम्हैं तरवार सो, है सब सूखी शान।
मूठ सुनहरी चाहिए, और मखमली म्यान॥ १७॥
कुल-कलंक कादर कुटिल व्यभिचारी बिनलाज।
करत दुष्ट दावा तऊ रजपूती कौ आज॥ १८॥
चाटत जग-पग स्वान-ज्यौं, फिरत हिलावत पूँछ।
बनत कहा अब मरद तैं, यौं मरोरिकैं मूँछ॥ १९॥

धिक्कार

तो देखत तुव भगिनि के खैंचत पामर केश।
जानि परत, या बाहु में रह्यौ न बल कौ लेश॥ २०॥
रे निलज्ज! जिनके अछत, अरिहिँ झुकायौ माथ।
अब तिन मूँछनु पै कहा पुनि-पुनि फेरत हाथ॥ २१॥
निज चोटी-बेटीन की सके राखि नहिँ लाज।
धिक धिक, ठाढ़ी मूँछ ए, धिक धिक, डाढ़ी आज॥ २२॥
भखत माँसु, मदिरा पियत, ताकत पर-तिय-द्वार।
धिक, तेरो जीवन-मरन, लंपट चोर लबार!॥ २३॥

मरिहै नहिँ कबहूँ कहा, धँसत न जो रण-माँझ ।
उपज्यौ कूख कुपूत तैं, रही न क्यों बिधि ! बाँझ ॥ २४ ॥
भाज्यौ पीठि दिखाय यौं, धँस्यौ न जूझन-माँझ ।
तो सम कादर-जनन तें, भलि छवानी बाँझ ॥ २५ ॥
जरति जाति जठरागि तें, जहँ-तहँ हाहाकार ।
देत भोज तैं नित तऊ साजि राज-दरबार ॥ २६ ॥
देखि दीन-दुर्दलनहूँ उठत न जाकौ बाहु ।
ग्रसतु तासु सरबसु-ससिहिँ पर-प्रताप-बल-राहु ॥ २७ ॥
निजमुख निज कथनी कथत, नितप्रति सौ-सौ बार ।
भट तें भाट भये भले बिरद-पुकारनहार ॥ २८ ॥
अछत कर्ण, कृप, द्रोण त्यौं भीष्म, पार्थ अरु भीम ।
खिँचि पंचाली-पट्ट रह्यौ, धिक बल-बीरज-सीम ॥ २९ ॥

आज कहाँ

पराधीनता-जलधि में बूड़त सुकृत-समाज ।
कहाँ उधारक धरम कौ, तारक आज जहाज ॥ ३० ॥
दै हाँके हाँके हठी, रण-थल सुभट अजैत ।
निपट निसाँके अब कहाँ, बल-बाँके बानैत ॥ ३१ ॥
कहँ अब रण-सरि-पैरिबो, कहँ बल-बिक्रम-तेज ।
रवि-मंडल-भेदनु कहाँ, कहँ पौंदनु सर-सेज ॥ ३२ ॥

कहँ प्रताप, कहँ दाप वह, कहाँ आन कहँ बान ?
कहाँ ऐंड़, कहँ मेड़ अब, है सब सूखी शान ॥ ३३ ॥
नहिँ बल, नहिँ बिक्रम कहूँ, जहँ-तहँ दीन अधीन ।
भई भूमि यह आजु का साँचेहुँ बीर-बिहीन ॥ ३४ ॥
अब, कोयल ! वह ऋतु कहाँ, कहँ कूजन तरु-डार ?
कहँ रसाल-रस-बौर त्यों, कहँ बन-बिहँग-बिहार ॥ ३५ ॥
धीर बीर-बर वै कहाँ, हठ-हमीर जग-बीच ।
अब तौ इत नित बढ़ि रहे निलज नराकृति नीच ॥ ३६ ॥

परशुराम-स्मरण

जित देखौ तित बढ़ि रहे कुल-कुठार भुवि-भार ।
क्यों न होत पुनि आजु वह परशुराम-अवतार ॥ ३७ ॥
देखि-देखि मद-चूर ए कादर, कूर कुसाज ।
जामदग्न्य के परशु की आवति सुधि पुनि आज ॥ ३८ ॥

भावी इतिहास

देखि दास-ही-दास चहूँ, इमि क्यों होत निरास ।
पढ़िहौ तुम कछु औरही या युग कौ इतिहास ॥ ३९ ॥
ह्वैहौ पुनि स्वाधीन तुम, सदा न रहिहौ दास ।
या युग के बलि-दान कौ लिखियौ तब इतिहास ॥ ४० ॥

व्यर्थ युद्ध

नाहिँ धर्म, नहिँ देश-हित, नाहिँ जाति कौ हेत ।
निज-निज स्वारथ पै, अहो ! रँगत रकत सों खेत ॥ ४१ ॥
करत शक्ति-व्यय व्यर्थ जे बिनु बिबेक, बिनु हेतु ।
मेटत ते सुख-शान्ति कौ सहज सनातन सेतु ॥ ४२ ॥
परधरती परतीय पै चेतहुँ भये अचेत ।
कटे न केते शूरमा, रँगे न केते खेत ॥ ४३ ॥

फूट

फूट्यौ, पै टूट्यौ न जो, भयौ कौन अस मर्द ।
जुग के बिलगेहूँ कहूँ रही खेल में नर्द ॥ ४४ ॥
राजपूत, सिख, मरहठे नठे बुँदेल, बघेल ।
अरी फूट ! या देश मेँ रच्यौ कौन यह खेल ॥ ४५ ॥
मेरु-दंड या देश कौ कुलिश-खंड अति चंड* ।
सहजैँ, हा ! गृह-फूट तेँ भयौ टूटि शतखंड ॥ ४६ ॥

* जग में घर की फूट बुरी ।
घर की फूटहिं सों बिनसाई सुबरन-लङ्क पुरी ॥
फूटहिं सों सब कौरव नासे भारत-युद्ध भयौ ।
जाकौ घाटो या भारत में अबलौं नहिं पुजयौ ॥
फूटहिं सों जयचन्द बुलायौ जवनन भारत-धाम ।
जाकौ फलअबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम ॥
फूटहिं सों नवनंद बिनासे, गयौ मगध कौ राज ।
चन्द्रगुप्त कों नासन चाह्यौ आपु नसे सहसाज ॥

भर्यौ बिभीषण-पुंज तेँ यह भारत-ब्रह्माण्ड ।
क्यों न होय गृह-भेद तेँ गृह-गृह लंका-काण्ड ॥ ४७ ॥
है जहँ 'आठ कनौजिया नौ चूल्हे' की रीति ।
तहाँ परस्पर प्रीति की कहा पढ़ावत नीति ॥ ४८ ॥
हैं ठाढ़े जा डार पै, काटत सोइ मतिमंद ।
घर-घर भारत-भाग तेँ भरे भूरि जयचंद ॥ ४९ ॥

विजया दशमी

जहाँ पराजयही बिजय मानत सभ्य-समाज ।
कहा जानि आयौ तहाँ फेरि दसहरो आज ॥ ५० ॥
नीलकंठ* तन पेखि धरु नीलकंठ-शुभध्यान ।
तुमहूँ परहित-हेतु यौं करौ हलाहल-पान ॥ ५१ ॥

अब समय कहाँ ?

लियौ तोरि दृढ़ गढ़ जबै, कहा सोचि अब जात ?
दीप सँजोवत तब कहा, जब ह्वै गयौ प्रभात ॥ ५२ ॥
आजु-काल्हि कब तेँ करत, भये न कबहुँ तयार ।
घलाघल्ली उत ह्वै रही, इत माँजत हथयार ॥ ५३ ॥

जो जग में धन मान और बल आपुन राखन होय ।
तौ अपुने घर में भूलेहूँ फूट करौ मति कोय ॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

*विजयादशमी के दिन नीलकंठ पक्षी का दर्शन शुभ और माँगलिक माना जाता है ।

अब-अब तौ कब तें कहत, सध्यौ न अबलौं तंत्र ।
वह 'अब' कब ऐहै, जबै ह्वैहै सिद्ध सुमंत्र ॥ ५४ ॥

गीता-रहस्य

अनासक्ति सों जोरिये कार्यकर्म-अनुरक्ति* ।
ज्यौं-त्यौं करि आराधिये, सुचित साधिये शक्ति ॥ ५५ ॥
'अद्वैतामृत-वर्षिणी' मानत सुधी-समाज ।
जानत हम-से अज्ञ पै गीता राष्ट्र-जहाज ॥ ५६ ॥

अयोग्य नरेश

अपने ही तनु की न जौ तुम पै होति सँभार ।
झूठमूठ फिरि बनत क्यों प्रजा-राज-रखवार ? ॥ ५७ ॥
रैयत-भार सभारिहैं किमि सुकंध सुकुवाँर !
जीवनहू जब ह्वैरह्यौ तुमकों भार पहार ॥ ५८ ॥
जिमि आँधर-कर आरसी, जिमि बानर-कर बीन ।
तिमि रैयत अवरेखिये नृपति-प्रमत्त-अधीन ॥ ५९ ॥
नहिँ चाहक अपनेनु के, नहिँ गाहक-रखवार ।
ए तौ रसिक बिदेस के रुचिर रिझावनहार ॥ ६० ॥

* तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर । [गीता]

या बसुधा कों भाग भरि भोगत भुज मजबूत* ।
कहा भागिहैं भूमि ए कादर क्रूर कुपूत ॥ ६१ ॥
शायर औध-नवाब† की करूँ कहा तारीफ़ ।
राज-काज कों पीठ दै सोचत बैठि रदीफ ॥ ६२ ॥
नहिँ बाँधतु बटपार, जे रैयत करत खराब ।
बाँधतु बैठ्यौ काफ़िया, वाजिद अली नवाब ॥ ६३ ॥
भूलेहुँ कबहुँ मदान्ध कों मति दीजौ अधिकार ।
मतवारे के हाथ कहुँ सांपत कोउ हथयार ॥ ६४ ॥

गो-नाश

गो-धन, गोवर्द्धन-धरन, गोकुलेश, गोपाल !
रँगत-रँगत गो-रकत सों भई भूमि तुव लाल ॥ ६५ ॥
लाल ! तिहारी लाड़िली, तुव गोकुल की गाय ।
कटति आजु गोपाल ! हा ! क्यों न बचावहु धाय ॥ ६६ ॥
चोरि-चोरि चाख्यौ जहाँ माखन, गोकुल-राज !
टुक देखौ, गो-रुधिर की बहति धार तहँ आज ॥ ६७ ॥

---

* वीरभोग्या वसुन्धरा ।

† लखनऊ के सुप्रसिद्ध रसिक नवाब वाजिदअली शाह, जो कविता में अपना तख़ल्लुस 'अख़्तर' रख़ते थे ।

गेरत हे, गोपाल ! तुम जहँ केसर-घनसार ।
टुक, देखौ, तहँ आजु हरि ! बहति गो-रुधिर-धार ॥ ६८ ॥
दंडक-बन मुनि-अस्थि लखि दैत्य-दलन-प्रन-कीन* ।
देखत गो-बध नाथ ! क्यों आजु मौन गहि लीन ? ॥ ६९ ॥

क्या से क्या ?

जहँ कीनों, गोपाल ! तुम नित गो-रस-छिरकाव ।
देखि आजु मरुभूमि-सो क्यों न होत हिय घाव ? ॥ ७० ॥
जहँ लुढ़कायौ, लाल ! तुम नित गो-रस, गोपाल !
जलहू आजु मिलै न तहँ, ग्वाल-बाल बेहाल ॥ ७१ ॥

जगत् का अमिथ्यात्व

परखतु जीवन-जौहरी प्राण-रत्न जहँ गूढ़ ।
ता साँचे संसार कों कहत असाँचो मूढ़ ॥ ७२ ॥
जा जग की रोटीन तें सूझतु अलख अनंत ।
मिथ्या ताकों कहत ए निलज निठल्ले संत ॥ ७३ ॥

* अस्थि-समूह देखि रघुराया । पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
जानतहू पूछिय कस स्वामी । सबदरसी तुम अंतरजामी ॥
निसिचर-निकर सकल मुनि खाये । सुनि रघुनाथ नयन-जल छाये ॥
निसिचर-हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाय-जाय सुख दीन ॥
[रामचरितमानस]

कादर साधु-संत

कनक-कामिनी में पगे, रँगे राग में आज ।
इन शठ मठधारीनु पै तौहूँ गिरति न गाज ॥ ७४ ॥
कथत मथत बेदान्त, पै रचत मंद छर-छंद ।
कहु, किमि कामानंद ए ह्वैहैं रामानंद ॥ ७५ ॥
कनक-कामिनी-दास ए साधु स्वारथानन्द ।
रामदास बिरले कहूँ, आजु आतमानन्द ॥ ७६ ॥
फूँकत जे गाँजो, अभखु भखि, भभूतिया भूत ।
लोलुप लंपट धूत ते बने फिरत अवधूत ॥ ७७ ॥

त्याग और आत्मानुभूति

'त्याग-त्याग' कत बकत, रे, राग-त्याग अति दूर ।
त्याग-तागही तैं बँधे यती सती अरु शूर ॥ ७८ ॥
लेत आत्म-अनुभूति-रस शूर सबल स्वाधीन ।
सके न करि कबहूँ कहूँ आत्म-लाभ बलहीन* ॥ ७९ ॥

---

* नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः
उपनिषद्

अछूत

अपनावत अजहूँ न जे अपनहिँ अंग अछूत ।
क्यों करि ह्वैहैँ छूत वै करि कारी करतूत ।। ८० ।।
जिन पायनु तेँ जान्हवी भई प्रगटि जग-पूत ।
तिनहीँ तेँ प्रगटे न ए तुम्हरे अनुज अछूत ? ।। ८१ ।।
सुर-सरि औ अंत्यज दुहूँ अच्युत-पद-संभूत ।
भयौ एक क्यों छूत, औ दूजो रह्यौ अछूत ? ।। ८२ ।।
जौ दोउनु कौ एकही कह्यौ जनक जग-बन्द ।
तौ सुर-सरि तेँ घटि कहा यह अछूत, द्विज मन्द ! ।। ८३ ।।
महा अशिव हू शिव भयौ जाहिँ सीस पै धारि ।
छुअत न तासु सहोदरनु, रे द्विज ! कहा बिचारि ।। ८४ ।।

मंगला और अमंगला

हाट-बाट नित बैठि निज जोबनु बेचनवारि ।
कही जाति या देश मेँ आजु 'मंगला' नारि ।। ८५ ।।
बिधवा तरुण-तपस्विनी असि-ब्रत-पालनहारि ।
कही जाति या जाति मेँ, हा ! 'अमंगला' नारि ।। ८६ ।।

बाल विधवा

जहाँ बाल-बिधवा-हियेँ रहे धँधकि अंगार ।
सुख-सीतलता कै तहाँ करिहै किमि संचार ? ।। ८७ ।।

भलैँ सुधा सीँचौ तहाँ, फलु न लागिहै कोय।
जहाँ बाल-बिधवान कौ अश्रु-पात नित होय ॥ ८८ ॥
सुर-तरुहूँ के फरन की मति कीजौ उत आस।
जाय बाल-बिधवा निकसि जित ह्वै भरति उसाँस ॥ ८९ ॥

श्वेत और श्याम

उन प्यारे गोरेनु कौ गाहकु सबु संसारु।
हम न्यारे कारेनु कौ कारो कान्ह अधारु* ॥ ९० ॥
तन कारो, कारो कुदिन, कारो कुल, गृह, गोत।
पै कुरूप कारेनु कौ हियो न कारो होत ॥ ९१ ॥
कौन काम के सेत घन, नीरस निपट निसार।
कारेहीँ घन स्याम-लौँ बरसावत रस-धार ॥ ९२ ॥

दीन और दीनबन्धु-शरण

चूसि गरीबनु कौ लुहू किये गुनाह दराज।
गहत गरीब-निवाज के कहा जानि पग आज ॥ ९३ ॥

---

* गोरी कों गोरे लागत जग अतिही प्यारे।
मो कारी कों कारे तुम नयननु के तारे ॥
उनकों तो संसार है, मो दुखिया कों कौन।
कहिबे कहा विचार है, जो तुम साधी मौन ॥
—सत्यनारायण कविरत्न

दीननु देखि घिनात जे, नहिँ दीननु सों काम।
कहा जानि ते लेत हैं दीनबन्धु को नाम ॥ ९४ ॥
दीन-हीन जानैँ कहा सेइ राज-दरबार।
उनकैँ तौ आधार बस दीनबन्धु कौ द्वार ॥ ९५ ॥

ऐसा क्यों

कलपावत कबतें हमैं धारि निठुरता-रूप।
करुणाघन, तुमहूँ भये आजु-काल्हि के भूप ? ॥ ९६ ॥
बिनु अंगनु कीनों हमैं, बिनु बल बिनु हथियार।
क्यों निरदई दई ! दई बिपत एकई बार ॥ ९७ ॥

निवेदन

होयँ न हरि, जा देश में, वज्रपाणि बलसीस।
लावनिता ललनान कों, तहँ न दीजियौ ईस ॥ ९८ ॥
'है स्वदेश मख-वेदिका, अरु आहुति मम प्रान।'
कोटि जन्महूँ, नाथ, जनि जावै यह अभिमान ॥ ९९ ॥
नहिँ चाहैँ साम्राज्य-सुख, नाहिँ स्वर्ग निर्वान।
जन्म-जन्म निज धर्म पै हरषि चढ़ावौँ प्रान ॥ १०० ॥

सातवाँ शतक

केसरी-वन्दना

गौरी-कर-लालितु सदा, पशुपति-पालितु जोय।
दनुज-दमनु दारुन दरौ दुरित केसरी सोय ॥ १ ॥

विविध

किये भीष्म पै अनल-लौं क्यों हरि, नैन रिसाय ?
जानत हौं, ब्रज-दौ वहै दियौ दृगनि दरसाय* ॥ २ ॥

जाव भलैं कुरुराज पै धारि दूत-वरवेश।
जइयौ भूलि न कहुँ वहाँ, केशव ! द्रौपदि-केश ॥ ३ ॥

व्योम-बान सररात, औ तड़कि तोप तररात।
सुथिर अथिर थहरात त्यौं दुर्ग दीह अररात ॥ ४ ॥

---

* 'दावानल-पान' के संबंध की महाकवि विहारी की सूक्ति—
सखि, सोहति गोपाल के उर गुंजन की माल।
बाहर लसति मनों पियें दावानल की ज्वाल ॥

काम न आये आजुलौं ह्वै अनाथ-रखवार ।
दिये तोहिँ भुजदंड ए, कहा जानि करतार ॥ ५ ॥
लेखेंहीं ऋतु लेखियतु, नितप्रति ग्रीषम साथ ।
जठर-ज्वालतें जरि रहे हम अनाथ, जगनाथ* ॥ ६ ॥
कोरी भोरी भावना ऐहै काम न आजु ।
बिनु साधैँ सुचि साधना नहिँ सरिहै कछु काजु ॥ ७ ॥
बलु साँचो निज बाहु-बलु, सीस-दानु सतदानु ।
त्यौँ साँचो सुठि ध्यानु इक पारथ-सारथि-ध्यानु ॥ ८ ॥
बिनामान तजि दीजियौ स्वर्गहुँ सुकृत-समेत ।
रहौ मान तौ कीजियौ नरकहुँ नित्य निकेत ॥ ९ ॥
अंतहुँ अरिहिँ न सौंपियौ, करियौ प्रण-प्रतिपाल ।
निज भावँरि की भामिनी, निज कर की करबाल ॥ १० ॥
बीरबधू ! तुव सौत वह बिजय-बधू नवबाल ।
तासु गरैँ गेरति तऊ कहा जानि रति-माल ॥ ११ ॥
भ्रमित भीत अरि-नारियाँ सगबग भाजति जाहिँ ।
आगैँ देखति नाहिँ, त्यौँ पाछैँ हेरति नाहिँ ॥ १२ ॥

---

* पत्राहीं तिथि पाइयत, वा घर के चहुँपास ।
नितप्रति पून्योही रहति, आनन-ओप-उजास ॥
—बिहारी

दनुज-दलन सौमित्रि-सर, मारुति-मुष्टि प्रहार ।
भीष्म-अतुल बिक्रम, तिहूँ ब्रह्मचर्य-व्रत-सार ॥ १३ ॥

दृगनि ओज-लाली लसै, रुधिर-पियाली हाथ ।
काल-नटी काली किलकि नटति कपाली साथ ॥ १४ ॥

साधतु साधनु एकही तजि अनेक बुधि-सीम ।
धनुष-सिद्ध अर्जुन भयौ, गदा-सिद्ध भो भीम ॥ १५ ॥

छुद्र बातहूँ बृहत की है जग जानन-जोग ।
बन सिंहन के खाँद* हूँ खोजत-नापत लोग ॥ १६ ॥

चित्र आर्य-साम्राज्य कौ सक्यौ न कोउ उतारि ।
चीन-ग्रीसहूँ के गये चतुर चितेरे† हारि ॥ १७ ॥

ह्वै सबलनु कों शूल जो करतु निबल-प्रतिपाल ।
बीर-जननि कौ लाल सो अहै धर्म की ढाल ॥ १८ ॥

करै जाति स्वाधीन जो, साँचो सोइ सुपूत ।
यौंतौ, कहु, केते नहीं कायर कूर कुपूत ॥ १९ ॥

फरति न हिम्मत खेत में, बहति न असि-व्रत-धार ।
बल-बिक्रम की बोरियाँ बिकति न हाट-बजार ॥ २० ॥

---

* बुन्देलखण्डी शब्द; पैरों के चिन्ह ।

† ह्वेनूशाँग, फ़ाहियान, इत्सिङ्ग इत्यादि चीन के एवं मेगास्थनीज़ आदि ग्रीस के यात्री ।

ऐहैँ याही ठौर हम, कहा फिरेँ जग होत ।
जैसे पंछी पोत कौ उड़ि आवतु पुनि पोत* ॥ २१ ॥
देश रसातल जाय किन, इत नित नौल बसंत ।
इन कवीनु की कामिनी रही लाय उर कंत ॥ २२ ॥
जिन समसेरन तेँ कबौँ कटे दुवन-सिर, हाय !
तिन तेँ काटत घासु तुम अब हँसिया गढ़वाय ॥ २३ ॥
को न अनय-मग पगु धर्‌यौ लहि इहि कुमति-कुदानु ?
न्याय-पतित भे भीष्महू भखि दुर्योधन-धानु ॥ २४ ॥
अथयौ सो अथयौ, न पुनि उनयौ भीषम-भान ।
आर्य-शक्ति-जय-पद्मिनी परी तबहिँ तेँ म्लान ॥ २५ ॥
तिथि-संबत पुरखानु के सुनि चौंकत चकराय ।
मनु गाथा सस-सृङ्ग की तुह्मैं सुनाई आय ॥ २६ ॥
भीरु छिपावतु जीव ज्यौं, कृपण छिपावतु दामु ।
सूर छिपावतु शक्ति त्यौं, चतुर छिपावतु नामु ॥२७ ॥
यथा राम-रावण-समर नीरद-नाद-विहीन ।
भारत-युद्ध अपूर्ण त्यौं बिना कर्ण प्रण-पीन ॥ २८ ॥
'जराधीन अँगछीन हौं, दीन, दंत-नख-हीन ।'
नहिँ ऐसी चिंता कहूँ कबहुँ केहरी कीन ॥ २९ ॥

* मेरो मनु अनत कहाँ सुखुपावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥
—सूरदास

या कलि में बलि-धर्म कौ कियौ दोइ उद्धार ।
गहिरवार पंचम* बली, अरु जगदेव पवाँर† ॥ ३० ॥

रचि-रचि कोरी कल्पना बहुत जल्प ना, मूढ़ !
सहज सती अरु सूर कौ गति-रहस्य अति गूढ़ ॥ ३१ ॥

निबल, निरुद्यम, निर्धनी, नास्तिक, निपट निरास ।
जड़, कादर करि देतु है नरहिँ अंधविश्वास ॥ ३२ ॥

रकत-माँसु सब भखि लियौ, पंजर डार्यौ तोरि ।
कहा मिलैगो तोहिँ अब, निर्दय ! हाड़ चिचोरि ॥ ३३ ॥

भाजत भग्गुल भभरि जहँ, खुलि खेलत तहँ बीर ।
जरत सुरासुर जाहिँ लखि, पियत ताहिँ शिव धीर ॥ ३४ ॥

कठिन राम कौ काम है, सहज राम कौ नाम ।
करत राम कौ काम जे, परत राम सों काम ॥ ३५ ॥

मतवारे सब ह्वै रहे मतवारे मत माहिँ ।
सिर उतारि सतधर्म पै कोउ चढ़ावत नाहिँ ॥ ३६ ॥

---

* काशीश्वर वीरभद्र गहिरवार का सबसे छोटा पुत्र जगदास था। इसे पंचम भी कहते हैं। जगदासने अपने भाइयों से अपमानित होकर विन्ध्य-वासिनी देवी को अपना सिर चढ़ाना चाहा, पर देवीने प्रकट हो तलवार पकड़ ली और इसे वर-दान दिया कि "जा, तेरी जय होगी और तेरे वंशधर मध्यभारत पर राज्य करेंगे।" पंचमने जो खड्ग अपना सिर काटने के लिए उठाया था, वह उसके सिर पर लगा और उससे रक्त की एक बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। इसी बूँद के गिरने के कारण पंचम के वंशज 'बुंदेला' कहे जाते हैं।

† जगदेव पँवारने अपने स्वामी के प्राण बचाने के लिए स्वयं अपना सिर देवी को चढ़ा दिया था।

तजि देती जौपै कहूँ, कोइल ! काग-कुठौर ।
तौ होती पच्छीनु में साँचेहुँ तैं सिरमौर ॥ ३७ ॥

सिंह-शावकनु के भये शिक्षक आजु शृगाल ।
एइ सिखैहैं अब इन्हैं गज-मर्द्दन कौ ख्याल ! ॥ ३८ ॥

'हम गंगोदक, हम गगन, हम दीपक, हम भान ।'
यही तुम्हैं लै बूड़िहै कुल-कोरो-अभिमान ॥ ३९ ॥

जदपि रोष दोऊ करति लखि-लखि परदृग लाल ।
तदपि कहाँ खल-खंडिनी, कहाँ खंडिता बाल ॥ ४० ॥

चूसि गरीबनु कौ रकतु करत इन्द्र-सम भोग ।
तउ 'गरीब-परवर' उन्हैं कहत अहो, ए लोग ! ॥ ४१ ॥

उत तैं तौं हाड़ा* हठी, इत बुँदेल† बलवान ।
अरि-अनीक की गेंद कै रच्यौ चारु चौगान ॥ ४२ ॥

---

* बूँदी के महाराज हाड़ा छत्रसाल । कविवर भूषण, मतिराम और लालने इनकी वीरता के कई पद्य लिखे हैं। कविवर मतिराम—औरङ्गजेब-दारा-युद्धके अवसर पर—इनकी वीर-गति पर लिखते हैं—

औरँग दारा जुरे दोउ जुद्ध, भये भट क्रुद्ध विनोद बिलासी ।
मारू बजै 'मतिराम' बखानैं भई अति अस्त्रन की बरखा-सी ॥
नाथ-तनै तिहिं ठौर भिर्‌यौ, जिय जानकैं छत्रिन कों रन कासी ।
सीस भयौ हर-हार-सुमेरु, छता भयौ आपु सुमेरु कौ बासी ॥

एक पद्य कविराज भूषण का भी—

चले चंदवान घनबान औ कुहूकबान, चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो ।
चली जमढाढ़ैं बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ लोह आँच जेठ के तरनिमान वै रहो ॥
ऐसे समै फौजैं बिचलाईं छत्रसालसिंह अरि के चलाये पायँ बीररस च्वै रहो ।
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले, ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रहो ॥

† बुँदेलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल ।

दोनों वीरश्रेष्ठ छत्रसालों के संबन्ध में महाकवि भूषण कह गये हैं—

बनत क्रोध-जित निबल नर धारि छमा अभिराम ।
करत कलंकित क्लीब ज्यौं ब्रह्मचर्यव्रत-नाम ॥ ४३ ॥
उपमा भट-भुजदंड की तो सँग जा दिन दीन ।
तबही तें, गज-सुण्ड ! तैं थिरता पलहुँ लही न ॥ ४४ ॥
धर्म-निरत सँग द्वेष कै कहाँ बचैहै प्रान ?
दुर्वासा-हरि-चक्र कौ गयौ भूलि उपखान ! ॥ ४५ ॥
कहँ गूलर-बासी यहै, कहँ वह बिश्व-बिहार !
कहँ यह पोखरि-मैं ढुकी, कहँ वह पारावार ! ॥ ४६ ॥
बिन सींचें निज हीय तें सद्य रक्त-रस-धार ।
कहँ स्वधर्म की लहलही रही डहडही डार ॥ ४७ ॥
आयौ, बलि, रति-युद्ध तें भाजि, भीरु ! दै पीठि ।
अब काहे असि-बाल पै फिरत लगायें डीठि ॥ ४८ ॥
पावसही मैं धनुष अब, सरित-तीरही तीर ।
रोदनही मैं लाल दृग, नौरसही मैं बीर ॥ ४९ ॥
टेक-टेक केते कहत, हठहू गहत अनेक ।
पै कहँ हठ हम्मीर की*, कहँ प्रताप की टेक ॥ ५० ॥

इक हाड़ा बूंदी-धनी, मरद महेवावाल ।
सालत नौरंगजेब कों ये दोनों छतसाल ॥
वै देखौ छत्ता पता, ये देखौ छतसाल ।
वै दिल्ली की ढाल, ये दिल्ली ढाहनवाल ॥
* तिरिया तेल हमीर-हठ, चढ़ै न दूजी बार ।

'सुई-नोक भरि भूमि, हरि ! नहिँ दूँगो बिनुयुद्ध† ।'
धनि, दुर्योधन-पैज वह, यद्यपि धर्म-विरुद्ध ॥ ५१ ॥
नैननि नित किन राखिये, तिनकी पायन-धूरि ।
पूरि पैज जे मरद की भये युद्ध मधि चूरि ॥ ५२ ॥
दिन-दूनी लागी बढ़ै बल-बीरज की माँग ।
छैल-चिकनियाँ हूँ रचैँ धीर-बीर के स्वाँग ॥ ५३ ॥
भर्‌यौ रक्त नहिँ जिन दृगनि देखि आत्म-अपमान ।
क्योँ न बिधे तिन मेँ, बिधे ! शूल बिषम बिष-बान ॥ ५४ ॥
नभ जिमि बिन ससि सूर के, जिमि पंछी बिनपाँख ।
बिनाजीव जिमि देह, तिमि बिनाओज यह आँख ॥ ५५ ॥
लखि सतीत्व-अपमानहूँ भये न जे दृग लाल ।
नीबू-नौन निचोरिये, छेदि फोरिये हाल ॥ ५६ ॥
देखि दीन-दुर्दलनहूँ दहत न जाके अंग ।
ता कुचालि कौ भूलिहूँ कबहुँ न कीजै संग ॥ ५७ ॥
केते गाल फुलायकैँ तमकि तरेरत नैन ।
लखि प्रचंड भुजदंड पै कछुवै करत बनै न ॥ ५८ ॥
लै असि-हलु जोती मही, बोयौ सीस-सुधान ।
करि सुचि खेती जसु लुन्यौ धनि रजपूत-किसान ॥ ५९ ॥

† सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव ।

बोय सीसु सीँच्यौ सदा हृदय-रक्त रण-खेत ।
बीर कृषकु कीरति लही करी मही जस-सेत ॥ ६० ॥

गये दिवस अब बिभव के, तजि दै बिषय-बिलास ।
होय देश स्वाधीन कब, करि वा दिन की आस ॥ ६१ ॥

इन नैननि किन राखिये दुखित दूबरे दीन ।
कीजै निज बलि-दान दै दलित देश स्वाधीन ॥ ६२ ॥

काम न ऐहैं अंत ए, बादि बजावत गाल ।
वैही सीसु चढ़ायहैँ, जे गुदरी के लाल ॥ ६३ ॥

रण-अंगन अरि-अंगना अंग-सुहागु सवाँरि ।
तनु की ज्वाल सिरावतीं ज्वाल-माल तनु धारि ॥ ६४ ॥

सहमि तमकि भाजत भजत, तुरत अधीर सुधीर ।
पीत अरुण परि जात मुख, लखि रण कादर बीर ॥ ६५ ॥

कहा मरोरत मूँछ उत बाँधि तुबक तरवार ।
सेवत जा दरबार कों नर्तक भाँड़ लबार ॥ ६६ ॥

छिन छाँड़त, छिन गहत क्यों, रहत न एकहु ढंग ।
पल-पल पलटत नीच तैं नित गिरगिट-ज्यौं रंग ॥ ६७ ॥

जीवन-नवलनिकुंज रमि जो चाहौ रस-पान ।
जाय छुड़ावौ प्रेम सों मृत्यु-मानिनी-मान ॥ ६८ ॥

देखतहीँ रण-भूमि वै क्यों न जाहिँ छुपि गेह ।
चित्र-लिखित लखि खड्ग जब थरथर काँपति देह ॥ ६९ ॥

भये न जो पद्दि सत्यब्रत, सबल, शूर स्वाधीन ।
तौ विद्या-लगि बादि धन, समय, शक्ति ब्यय कीन ।। ७० ।।
देखि सती-ब्रत-भंगहूँ आवत जाहिँ न रोष ।
ता कादर के कदन में मानिय नैक न दोष ।। ७१ ।।
कीजै किन कीरति अचल, दीजै दुकृत बिडारि ।
क्यों न बीर-सुर-सरित में लीजै अंग पखारि ।। ७२ ।।
कियौ राज सुर-राज ज्यौं जहाँ यवन-सम्राट ।
सो वह दिल्ली हाट-लौं लई लूटि ब्रज-जाट* ।। ७३ ।।
स्वर्ण-दान-हित कर्ण तूँ, केशवराय-अनन्य !
अबुलफ़ज़ल-करि-केहरी बीरसिंह† नृप धन्य ।। ७४ ।।
नहिँ बद्दल दल-बल यहै, तड़ित न यह किरपान ।
नहिँ घन गाजत, गहगहे बाजत तुमुल-निसान‡ ।। ७५ ।।

---

* भरतपुरधिप वीर-वर सूरजमल के पुत्र महाराज जवाहरसिंहजी द्वारा की हुई दिल्ली की इतिहास-प्रसिद्ध लूट ।

† देखो टिप्पणी—तीसरा शतक, ६८ दोहा ।

‡ निम्नलिखित कवित्त के आधार पर—

बद्दल न होहिं दल दच्छिन घमंड माहिं,
घटाहूँ न होहिं दल सिवाजी हँकारी के ।
दामिनी दमंक नाहिं, खुले खग्ग बीरन के,
बीर सिर छाप लखु तीजा असवारी के ॥
देखि-देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि-उझकि उठैं बहत बयारी के ।
दिल्ली मतिभूली कहै बात घन घोर घोर,
बाजत नगारे जे सितारे गढ़-धारी के ॥

—भूषण

है पानिप तरवार कौ कौन उतारनहार ?
कौन उखारनहार है मरद-मूँछ कौ बार ? ॥ ७६ ॥

धन्य बनिक जो लै तुला, बैठ्यो समर-बजार।
अरि मुंडनु कौ धर्म सों कियौ बनिज-ब्यौपार ॥ ७७ ॥

कटत खटाखट मुंड, त्यौं पटत रुंड पर रुंड।
जहँ-तहँ हल्दीघाट पै लहरत लोहित-कुंड ॥ ७८ ॥

तौलगिहीँ तूँ गरजि लै, गो-घातक ! बनमाहिँ।
जौलगि मत्त मृगेन्द्र ! यह दबी लबलबी नाहिँ ॥ ७९ ॥

पेशकब्ज, दृढ़ गुर्ज, त्यौं बरछी, बाँक, कटार।
हैं आभूषण बीर के तुबक, तीर, तरवार ॥ ८० ॥

आँजि ओज-आँजनु दृगनि दई अनी बिचलाय।
क्यों न तोहिँ रण-बाँकुरे ! मसक गयन्द लखाय ॥ ८१ ॥

आसव एतो ओज कौ लीजै दृगनि उड़ेलि।
मर्दि मीजिये मसक-ज्यौं रिपु-गयन्दहूँ पेलि ॥ ८२ ॥

शरणागत, मद-मत्त, तिय, क्लीब, निरस्त्र, अनाथ।
इन्हैं घालिबे नहिँ कबौं मरद उठायौ हाथ ॥ ८३ ॥

हृदय-जीत-सी जीत नहिँ, भरम-भीति-सी-भीति।
धर्म-नीति-सी नीति नहिँ, कृष्ण-प्रीति-सी प्रीति ॥ ८४ ॥

सेवैं हम गुरु-खालसा, है न लालसा और।
वाह गुरू की मेहर सों फते होय सब ठौर ॥ ८५ ॥

रण-अन्हान सों नहिँ तुलैँ सहसतीर्थ के न्हान ।
अभय-दान पै वारिये अमित यज्ञ के दान ॥ ८६ ॥

लिखे हमारे भाल पै अंक न अर्थ-अधीन ।
ज्यौं पानीपत पै भये हम पानी-पत-हीन ॥ ८७ ॥

'आये रण में जूझिकैं लाल लाड़िले काम ।'
सुनि, छाती फूली, फटी, गई जननि सुर-धाम ॥ ८८ ॥

सुमन-सेज सर सेजही, रण रति-रीति रसाल ।
सुभट-लाल-हित हित-रँगी रमण-बाल करबाल ॥ ८९ ॥

कारण कहुँ, कारज कहूँ, अचरज कहत बनै न ।
असि तौ पीवति रकत, पै होत रकत तुव नैन ॥ ९० ॥

वर्म चर्म असि तूण धनु सजे सूर सरदार ।
वह सब मुख मेचक किये वा दिन बिन हथयार* ॥ ९१ ॥

मुक्ति-हेतु इक करत तप, अपर दान, मख, ध्यान ।
पै छिति छत्रिहिँ छाँड़ि रण नाहिँ न साधन आन ॥ ९२ ॥

सुनै कवित पजनेसके जिनसों मंजुल, मन्द ।
तिन श्रवननु सों अब कहा सुनिहै भूषण-छन्द ? ॥ ९३ ॥

कथनी तौ औरै कछू, पै करनी कछु और ।
हम-से कादर कूरहूँ बनत सूर-सिरमौर ॥ ९४ ॥

* तीज-परब सौतिन सजे भूषन बसन सरीर ।
सबै मरगजे-मुँह करीँ इहीँ मरगजैँ चीर ॥
—विहारी

क्षात्र धर्म, यश-कौमुदी, कृष्ण-रूप-रुचि-राग ।
होउ हरे ! संगमु सदा यहै सुहाग-प्रयाग ॥ ९५ ॥
मन-मोहिनि वै सतसईं हिरनी-सी सुकुवाँरि ।
कहा रिझैहै रसिक-मन यह सिंहिनि भयकारि ॥ ९६ ॥
नहिँ रस या सतसई में, नाहिँ सुपद-लालित्य ।
भूषितहूँ दूषित भयौ परसि याहि साहित्य ॥ ९७ ॥
वै कुरंगिनी सतसईं, सबै राखिहैं लालि ।
को लैहे सिर बिपत मो भूखी बाघिन पालि ॥ ९८ ॥
उर-प्रेरक श्रीहरि भये, भई प्रगटि लाहौर ।
सतसइया पूरन भई पदमावती* सुठौर ॥ ९९ ॥
चैत-सुदी-सुभ-पंचमी, बेद सिद्धि निधि इन्दु ।
करी समापत सतसई हरी सुमिरि गोविन्दु ॥ १०० ॥

समाप्त

* पन्ना नगरी का प्राचीन नाम । परिणामी पंथ के तो पन्ना को आज भी 'पद्मावती' पुरी कहते हैं ।

मुद्रक—बाबू शारदाप्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस प्रयाग।

प्रकाशक—साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।